वेद-परिचय

(प्रथम भाग)

पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

मण्डल, औन्ध



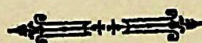
“ वेद्--परिचय ” परीक्षाकी पाठविधि ।

वेद-परिचय ।

॥ प्रथम भाग ॥

लेखक

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय-मण्डल, औंध (जि० सातारा)



सन १९४०, शक १८६१, संवत् १९९६

मुद्रक और प्रकाशक
वसंत श्रीपाद सातवळेकर, बी॰ ए॰,
भारत-मुद्रणालय, औंध (जि॰ सातारा)

'वेदपरिचय' परीक्षा की पाठविधि ।

स्वाध्याय-मण्डल द्वारा वेद की जो परीक्षाएँ होती हैं, उनकी पाठविधि नियत हो चुकी है। उन परीक्षाओं में प्रथम परीक्षा 'वेद-परिचय' नामक है। इस परीक्षा के लिए तीन सौ वेदमन्त्रों की पाठविधि नियत हुई है। इस पाठविधिकी प्रथम पुस्तक जिसमें १०० वेद-मन्त्र हैं, पाठकों के सामने रखी जाती है। क्रमशः अगले दोतीन महीनोंमें शेष दो सौ मन्त्रोंकी दो अन्य पुस्तकें भी प्रकाशित की जाएँगी।

इन पुस्तकोंमें जो वेदमन्त्र दिए जाएँगे, वें फुटकर नहीं होंगे। संपूर्ण सूक्तके सूक्त दिए जाएँगे। इससे मन्त्रका अर्थ करनेके समय सूक्तके आगे पीछेके मन्त्रोंका अनुसंधान करनेकी रीति पाठकोंके ध्यानमें स्वयं आजाएगी।

इन में मन्त्र, मन्त्रके पद, पदोंका अन्वय, अन्वयका अर्थ तथा भावार्थ दिया जायगा। पश्चात् मन्त्रके पदोंका विशेष अर्थ भी स्वतन्त्र परिशिष्टमें दिया जायगा। इसके पश्चात् संक्षिप्त अर्थ इंग्लिश भाषामें दिया जायगा। अन्तमें सूक्तके सुभाषित, जो नित्य स्मरण करने योग्य होते हैं और जिनसे मानव-धर्मका प्रकाश होता है, दिए जाएँगे। इन सबके अध्ययनसे पाठकों को वेदमन्त्रोंका ठीक ठीक आशय ध्यानमें आजाएगा।

ये अध्ययन के ग्रन्थ हैं।

पाठविधिके सबके सब ग्रन्थ अध्ययनके लिए बनाये जा रहे हैं। ये केवल एकवार पढकर छोड देने के नहीं हैं। इनका जहाँतक अध्ययन किया जाय, वहाँतक के मन्त्र कण्ठ होने चाहिएँ। इनके अध्ययन की विधि यह है—

१ सबसे प्रथम मन्त्र कण्ठ करिए। मन्त्र कण्ठ होनेके पश्चात्,

२ मन्त्रके पद कण्ठ करिए और साथ साथ अन्वय कैसा होता है, यह भी देखिए। यदि मन्त्र और पद कण्ठ हुए होंगे तो अन्वय स्वयं स्मरणमें रहेगा।

३ मन्त्र और उसके पद कण्ठ करने के समय मन्त्रोंके स्वर भिन्न हैं और

पद होनेपर स्वर भिन्न हुए हैं, यह बात आपके ध्यानमें आजाएगी।

४ मन्त्र और पद कण्ठ करने के समय नीचे रेखावाले अक्षर निम्न स्वरमें, चिह्नरहित अक्षर उससे उच्च स्वरमें और ऊपर रेखावाले अक्षर उससे ऊँचे स्वरमें पढिये। मोटे तौर पर उक्त अक्षरोंके क्रमशः 'सा,रे,ग' ये स्वर होंगे। इस उच्चारण की एक पुस्तक तय्यार की जा चुकी है। पाठकोंको इस परीक्षाके पश्चात् उसका अध्ययन करना चाहिए। उस में स्वरोंके उच्चारकी रीति ठीक ठीक दी है।

५ मन्त्र, पद और अन्वय कण्ठ होनेके पश्चात् अर्थ को भी कण्ठ करनेके समान ही स्मरणमें रखना चाहिये। मन्त्र बोलते ही, पद, अन्वय और अर्थ तथा भावार्थ पुस्तक देखे विना बोल सकें, ऐसा आपका अध्ययन होना चाहिए। आपके किसी मित्रके हाथमें पुस्तक रहे और आप मन्त्र, पद, अन्वय, अर्थ और भावार्थ जवानी बोलते जाएँ। जब इस प्रकार मन्त्र शुद्ध जवानी याद होंगे, तभी समझें कि इस पुस्तक का अध्ययन संपूर्ण हुआ।

६ पाठक यहाँ दिया हुआ अर्थ देखें और कण्ठ करें, परंतु साथ ही अपनी स्वतन्त्र बुद्धिसे भी अधिक अर्थ की खोज करें। स्वतन्त्र रीतिसे विचारशक्ति का उपयोग करना अत्यन्त आवश्यक है।

पाठक यदि एकएक मन्त्र प्रतिदिन याद करते जाएँगे, तो तीन सौ मन्त्रोंकी पुस्तक एक वर्षमें निःसंदेह याद हो सकेगी। जैसे जैसे अभ्यास बढता जाएगा, वैसे वैसे पाठशक्ति भी बढेगी और एक वर्षमें इससे दो तीन गुणे मन्त्र स्मरणमें रह सकेंगे।

आशा है पाठक इस पाठविधिसे अधिकसे अधिक लाभ उठाएँगे।

निवेदक

औंध (सातारा)
३-५-४०

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
संचालक, स्वाध्याय--मण्डल।

संज्ञानसूक्तम् ।

(ऋ० १०।१९१।१—४)

(ऋषिः— १–४ संवनन आङ्गिरसः । देवता– अग्निः, २–४ संज्ञानम् ।
छन्दः—अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्)

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥ १ ॥

पदानि– संऽसं । इत् । युवसे । वृषन् । अग्ने । विश्वानि । अर्यः । आ ।

इळः । पदे । सं । इध्यसे । सः । नः । वसूनि । आ । भर ॥१॥

अन्वयः– (हे) वृषन् अग्ने ! (त्वं) अर्यः विश्वानि सं सं इत् युवसे, इडः (इळः) पदे सं इध्यसे, सः (त्वं) नः वसूनि आ भर ।

अर्थ— हे (वृषन्) बलवान् (अग्ने) प्रकाशक देव अग्ने ! तु (अर्यः) स्वामी-प्रभु–होता हुआ (विश्वानि) सबको (इत्) निश्चय-पूर्वक (सं) उत्तम योग्य रीतिसे तथा (सं) मिलकर (आ युवसे) सब प्रकारसे मिश्रित करता है, तथा पृथक् भी करता है। और (इळः) भूमिके अथवा वाणीके (पदे) स्थानमें (सं इध्यसे)

उत्तम रीतिसे प्रकाशित होता है। (सः) वह तू (नः) हमें (वसूनि) धनों से (आ) सब ओर से (भर) भरपूर कर ।

भावार्थ— प्रकाशक देव सबसे बलवान् और सबका प्रकाशक है, वहीं प्रभु यहाँ हमारे सामने अग्निरूपसे विद्यमान है। वह ईश्वर सबको योग्य रीतिसे मिलाता है और आवश्यकता होनेपर पृथक् भी करता है। वह प्रभु इस भूमिपर अग्निरूपसे प्रदीप्त होता है और वाणीकी जड में भी उसी प्रेरक देव की प्रेरणा है। उसी ईश्वर की हम उपासना करते हैं। वह देव हमें सब आवश्यक और सहायक धनोंसे सदा भरपूर करे।

(वृषन्) Mighty (अग्ने) FIRE! Thou art real (अर्यः) Lord, and (युवसे) unitest (विश्वानि) all things (सं) with real fitness and (सं) preciousness and (युवसे) separate them all (इत्) as well. Thou (सं इध्यसे) art enkindled on (इळः पदे) the place of libation on this earth, as well as in (इडः पदे) the root place of our speech. (भर) Bring (नः) us all (वसूनि) real treasures (आ) from all sides.

मन्त्रके पदोंका अर्थ ।

सम्— एकीभावे, सद्भावे, साधुभावे (एक होना, मिलाना, उत्तम अवस्था)।

इत्— निश्चयपूर्वक, निश्चित पद्धतिसे । **वृषन्—** शक्तिमान् ।

युवसे— यु मिश्रणे अमिश्रणे च (मिलाना, पृथक् करना)।

अग्नि— तदेवाग्निः (यजुः ३२। १) अग्नि ही वह ब्रह्म है।

अर्यः— श्रेष्ठ स्वामी प्रभु ।

इळः— इडः— (इड्, इर्, इल्) पृथ्वी, यज्ञभूमि, वाणी ।

समिध्यसे— सं इध्यसे= उत्तम प्रकारसे प्रकाशित होता है ।

वसूनि— वासयतीति वसु; जिससे प्राणिमात्रका निवास उत्तम रीतिसे हो सकता है वह संपद् वसु कहलाती है ।

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥२॥

पदानि– सं । गच्छध्वं । सं । वदध्वं । सं । वः । मनांसि । जानतां ।

देवाः । भागं । यथा । पूर्वे । संऽजानानाः । उपऽआसते ॥२॥

अन्वयः– सं गच्छध्वम् । सं वदध्वम् । वः मनांसि सं जानताम् । यथा पूर्वे संजानाना देवाः भागं उपासते ।

अर्थः– (सं गच्छध्वं) मिलकर चलो, मिलकर अपनी हलचल करो, (सं वदध्वं) मिलकर वार्तालाप करो, (वः मनांसि) अपने मनों को आप सब (सं जानतां) मिलकर जानो, (यथा) जिस प्रकार (पूर्वे संजानानाः देवाः) पूर्व समयके एकमतसे रहनेवाले देव जन (भागं) भजनीय-सेवनीय-कर्तव्यके भागको (उपासते) मिलकर, एक स्थानपर बैठकर करते थे, [इसी प्रकार आप भी अपना कर्तव्य मिलकर करते रहो]।

भावार्थ— मिलकर चलो, मिलकर संभाषण करो, मिलकर अपने सब विचारोंको जानो, सबकी एकता विचार, उच्चार, आचार में करो। जैसे प्राचीन कालके ज्ञानी जन आपना कर्तव्य कर्म मिलकर करते थे, वैसे ही तुमभी अपना कर्तव्य करते रहो।

देवता Subject of this stanza is "Agreement or Unanimity in assembly" संज्ञानम् ।

(सं गच्छध्वं) Assemble and (सं वदध्वं) speak together. Let (वः) your (मनांसि) minds (सं जानतां) be all of one accord. (यथा) As (पूर्वे) ancient (देवाः) divines (संजानानाः) used to be unanimous, and (आसते) used to sit (उप) together for doing their appointed (भागं) share in work, [do ye accordingly.]

मन्त्रस्थ पदोंके अर्थ ।

संगच्छ्- (सं) मिलकर (गच्छ) चलना, मिलकर हलचल करना ।

संवद्- मिलकर, एक होकर बातचीत करना, जिससे विरोध न हो इस रीतिसे वार्तालाप करना ।

संजानतां- मिलकर एक होकर जानो, ठीक प्रकारसे जानो ।

देवाः- दैवी संपत्तिसे युक्त लोग, दिव्य जन, व्यवहार करनेवाले लोग ।

भागः- कर्तव्य का भाग ।

संजानानाः- एक होकर कर्तव्यकर्म करनेवाले ।

उपास्- समीप समीप बैठना, एक होकर करना, मिलकर करना ।

समानो मन्त्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभि मंन्त्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि ॥३॥

पदानि— समानः । मन्त्रः । संऽइतिः । समानी । समानं । मनः । सह । चित्तं । एषां ।

समानं । मन्त्रं । अभि । मन्त्रये । वः । समानेन । वः । हविषा । जुहोमि ॥३॥

अन्वयः— मन्त्रः समानः । समितिः समानी । मनः समानम् । एषां चित्तं सह । वः समानं मंन्त्रं अभिमन्त्रये । वः समानेन हविषा जुहोमि ।

अर्थ—आप सबका (मन्त्रः) विचार (समानः) सबके लिए समान हो, आप सबकी (समितिः) सभा (समानी) सबके लिए समान हो, आप सबका (मनः समानं) मन समान हो, (एषां चित्तं) इन सबका चित्त (सह) साथ साथ, समान हो, (वः) आप सबके लिये (समानं मन्त्रं) एकही समान विचार (अभि मन्त्रये) मैं निश्चयपूर्वक देता हूँ। (वः समानेन हविषा) आप सबको मैं समान, एकही हवि द्वारा (जुहोमि) हवन करनेका आदेश देता हूँ ।

भावार्थ— आप सबका विचार सबके लिये एक जैसा हितकारी हो, कभी विरोधी न हो; आपकी सभामें सबकी समानता रहे, विषमता कभी न हो; आपके मन में यही समभाव सदा रहे, कभी विषम भाव न उठे; आपके सब लोगोंका चित्त एकही समान हितकारी विचारसे भरा हो, कभी मतभेद होकर पक्षभेद न बनें; आप सबको एकही ध्येयसे मैं प्रेरित करता हूँ, ऐसेही आपभी सबको एकही विचार की प्रेरणा करते रहें, विरोध न खडा करें; आपके पास यज्ञके समान साधन उपस्थित हों और सबके सब मिलकर एकही यज्ञमें संमिलित हों और सब मिलकर यज्ञकी पूर्णता करें।

May your (मन्त्रः) idea be (समानः) common, your (समितिः) assembly be (समानी) common, your (मनः) mind be (समानं) common, so may (एषां) their (चित्तं) thoughts (समानं) be united. A (समानं) common (मन्त्रं) purpose (अभिमन्त्रये) do I lay before (वः) you, ye therefore (जुहोमि) worship with (वः) your (समानेन) common (हविषा) oblation.

मन्त्रस्थ पदोंके अर्थ।

समानः– सबके लिये एक जैसा।
समितिः– सभा, ग्रामसभा, राजसभा, धर्मसभा, न्यायसभा।
चित्तं– चित्त, मन।
मन्त्रः– विचार, ध्येय, निश्चित मत।
सह– साथ साथ रहनेवाला।
हविष्– अन्न, हवन करनेके पदार्थ, पूजा करनेके साधन।
जुहोमि– हु– दानादानयोः= देना, लेना, अर्पण करना, यज्ञ करना।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥४॥

पदानि– समानी । वः । आऽकूतिः । समाना । हृदयानि । वः ।

समानं । अस्तु । वः । मनः । यथा । वः । सुऽसह । असति ॥४॥

अन्वयः-- वः आकूतिः समानी । वः हृदयानि समाना (समानानि) । वः मनः समानं अस्तु । यथा वः सुसह असति ।

अर्थ– (वः आकूतिः) आपका संकल्प (समानी) समान हो। (वः हृदयानि समाना = समानानि) आपके अन्तःकरण समान हों। (वः मनः समानं) आपका मन समान (अस्तु) हो, (यथा) जिससे (वः) आप सब (सु–सह) उत्तम प्रकारसे साथ साथ (असति) मिलकर रह सकें– एक बनकर कार्य कर सकें।

भावार्थ– सबका सबके लिए समान हितकारी निश्चित प्रस्ताव हो, उसमें किसी प्रकारकी विषमता न रहे। आपके हृदय समान रीतिसे परस्पर हितकारी विचार करते रहें, कभी विरोधी भाव न उठे। आपका मन सबका हित करनेका समान विचार सदा धारण करे, विरोधी विचार वहाँ न रहे। इस प्रकार आप सबकी एकता सुगमता से हो और आपसमें कभी विरोध न हो।

May one and (समानि) the same be (वः) your (आकूतिः) resolve, and may (वः) your (हृदयानि) hearts be of (समाना) one accord. (समानं) United (अस्तु) be (वः) your (मनः) thoughts (यथा) by which all of (वः) you (सु-सह असति) may live happily in unity

मन्त्रस्थ पदोंके अर्थ ।

आकूतिः- संकल्प, निश्चित मत, ध्येय ।
हृदयम्- अन्तःकरण ।
मनः- मनन करनेकी इन्द्रिय, अन्तरिन्द्रिय ।
सुसह- साथ साथ कार्य करनेकी उत्तम अवस्था ।
असति- अस् = होना, बैठना, मिलना ।

इस सूक्तके सुभाषित ।

ध्यानमें रखने योग्य वाक्य

१. वृषन् अर्यः विश्वानि संयुवते (युवसे)- बलशाली समर्थ ही सबको संघटित करता है ।

२. वृषन् अर्यः इळस्पदे समिध्यते (समिध्यसे)- बलिष्ठ श्रेष्ठ ही इस भूमिपर चमकता है ।

३. वृषन् अर्यः वसूनि आ भर(ति)-महाबली श्रेष्ठ वीर ही सब धनों को इकट्ठा करता है ।

४. संगच्छध्वम्- संगठन करो ।
५. संवदध्वम्- मिलकर उत्तम बातचीत करो ।

६. वः मनांसि संजानताम्– अपने मनों को ठीक प्रकार से जानो, सुसंस्कारसंपन्न करो।

७. यथा पूर्वे भागं उपासते–जैसे अपने पूर्वज अपना कर्तव्य करते रहे (वह इतिहास जानकर वैसा आचरण करो)।

८. वः मन्त्रः समानः– आप सबका विचार एकसा हो।

९. वः समितिः समानी– आपकी सभा सबके लिए समान हो।

१०. वः मनः समानम्– आपका मन सबके विषयमें समभाव धारण करे।

११. एषां चित्तं समानम्– इन सबका चित्त समान– समभावसे युक्त हो।

१२. वः समानं मन्त्रं अभिमन्त्रये–आप सबके लिये समान विचार की प्रेरणा करता हूं, आप सब समभावसे प्रेरित हों।

१३. समानेन हविषा जुहोमि– समान हवनसामग्रीसे हवन करता हूँ। (सब इकट्ठे बैठकर एकही द्रव्यसे समान भावके साथ एक यज्ञको पूर्ण करते रहें।)

१४. वः आकूतिः समानी– आप सबका संकल्प एक हो।

१५. वः हृदयानि समानानि– आपके अन्तःकरण एक हो।

१६. वः मनः समानं अस्तु– आपका मन एक हो।

१७. वः सु-सह असति– आपका उत्तम रीतिसे परस्पर सहवास हो।



सांमनस्यम् ।

(पिप्पलाद ५।१८।१–७)

(अथर्व० ३ । ३० । १–७)

(ऋषिः– अथर्वा । देवता– सांमनस्यम् । छन्दः–१–४ अनुष्टुप्, ५ विराड् जगती, ६ प्रस्तारपंक्तिः, ७ त्रिष्टुप् ।)

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥१॥

पदानि– सऽहृदयम् । साम्ऽमनस्यम् । अविंऽद्वेषम् । कृणोमि । वः ।

अन्यः । अन्यम् । अभि । हर्यत । वत्सम् । जातम्ऽइव । अघ्न्या ॥१॥

अन्वयः– वः सहृदयं, सांमनस्यं अविद्वेषं कृणोमि । अन्यः अन्यं (तथा) अभि हर्यत, अघ्न्या जातं वत्सं इव ॥

अर्थ– (वः) आप सबको (सहृदयं) समान अन्तःकरण, और (सांमनस्यं) समान मन धारण करने का तथा (अ–वि–द्वेषं) परस्पर विद्वेष न करनेका उपदेश (कृणोमि) करता हूँ । आपमें से (अन्यः) प्रत्येक (अन्यं) दूसरेके साथ ऐसा (अभि हर्यत) प्रेमपूर्वक व्यवहार करे कि (इव) जैसी (अ–घ्न्या) गौः (जातं वत्सं) जन्मे हुए बच्चेके साथ प्रेम करती है ।

भावार्थ- आप सब परस्परके व्यवहार में हृदयमें शुभ भाव तथा मनमें शुभ संकल्प धारण करें और कभी परस्पर द्वेष न करें। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के प्रति ऐसा प्रेम करे, कि जैसे गौ अपने नवजात बछडे पर प्रेम करती है।

This hymn is for securing love and concord.

I (कृणोमि) do make for (वः) you (सहृदयं) concord (सांमनस्यं) unanimity, and (अ-वि-द्वेषं) freedom from hate. (अभि हर्यत) Do ye show affection (अन्यः) the one (अन्यं) towards another, (इव) as (अ-घ्न्या) the un-violable [cow] does towards (वत्सं) the calf (जातं) just born.

अथर्व-पिप्पलाद-संहिताका पाठ।

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्योऽन्यंमभि नवत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥

(पिप्पलाद ५।१८।१)

सायनभाष्यपाठः- सांमनुष्यं- परस्परप्रीति करनेवाले मनुष्य 'संमनुष्य' कहलाते हैं।

मन्त्रस्थ पदोंके अर्थ।

सहृदयं- समभावयुक्त अन्तःकरण का होना।
सांमनस्यं- सम बुद्धिसे युक्त मनका होना।
अ-वि-द्वेषः- किसीका विशेष द्वेष न करना, निर्वैरभाव का धारण करना।
अभिहर्यत- अभि+हर्य (हर्य् गतिकान्त्योः) सब प्रकारसे प्रेम करना।
अघ्न्या- अ-हननीय, अवध्य, गौ।
अभिनवत- अभि+नु; प्रेमसे पुकारना।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥२॥

पदानि– अनुऽव्रतः । पितुः । पुत्रः । मात्रा । भवतु । समूऽमनाः ।

जाया । पत्यै । मधुऽमतीम् । वाचम् । वदतु । शन्तिऽवाम् ॥२॥

अन्वयः– पुत्रः पितुः अनुव्रतः भवतु । (पुत्रः) मात्रा संमनाः (भवतु) । जाया पत्ये मधुमतीं शन्तिवां वाचं वदतु ।

अर्थ– (पुत्रः) लडका (पितुः) पिताके (अनु–व्रतः) अनुकूल कार्य करनेवाला (भवतु) हो, तथा पुत्र (मात्रा) अपनी माताके साथ (संमनाः) मिलते जुलते मनवाला हो । (जाया) पत्नी (पत्ये) अपने पतिके साथ (मधुमतीं) मीठा और (शान्तिवां) शान्तियुक्त (वाचं) वचन (वदतु) बोले ॥

भावार्थ– पुत्र अपने मातापिताकी इच्छा के अनुकूल कार्य करे, उनका विरोध न करे । पत्नी अपने पतिसे मीठा और शान्ति बढानेवाला भाषण करे, न लडे ।

(पुत्रः) The son (अनुव्रतः भवतु) should act agreeable to (पितुः) his father and (संमनाः) be one-minded with his mother. Let the (जाया) wife (वदतु) speak (पत्ये) to her husband (मधुमतीं) sweet, (शन्तिवां) calm and gentle (वाचं) words.

पिप्पलाद–संहितापाठः ।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवति संयतः ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम् ॥

मन्त्रस्थ पदोंके अर्थ ।

अनुव्रतः– अनुकूल कार्य करनेवाला, अनुकूल नियमोंसे चलनेवाला ।

संमनाः– जिसका मन मिलता हो, अनुकूल मनवाला ।

जाया– पत्नी ।

मधुमती– शहदसे युक्त, मीठा ।

शान्तिवां– शान्त, मभ्य ।

पिप्पलाद-संहिताके मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ—

भवति– होता है ।

सं–यतः– संयमी, उत्तम रीतिसे मिला हुआ ।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥३॥

पदानि– मा । भ्राता । भ्रातरम् । द्विक्षत् । मा । स्वसारम् । उत । स्वसा । सम्यञ्चः । सऽव्रताः । भूत्वा । वाचम् । वदत । भद्रया ॥३॥

अन्वयः– भ्राता भ्रातरं मा द्विक्षत् । उत स्वसा स्वसारं मा (द्विक्षत्) । (सर्वे) सम्यञ्चः सव्रताः भूत्वा, भद्रया वाचं वदत ॥

अर्थ– (भ्राता) भाई (भ्रातरं) भाईसे (मा) न (द्विक्षत्) द्वेष करे । (उत) और (स्वसा) बहिन (स्वसारं) बहिनसे (मा) न (द्विक्षत्) द्वेष करे । सब (सम्यञ्चः) मिलजुलकर (सव्रताः) एक कार्य करनेवाले (भूत्वा) होकर, (भद्रया) कल्याणकारक (वाचं) भाषण (वदत) बोलो ॥

भावार्थ– भाई-बहिन आपसमें किसीका द्वेष न करें, भाई-भाई, बहिन-बहिन भी आपसमें न झगडे । सब मिलकर आनन्दसे रहें, एक कार्य करते जाएँ और आपसमें कल्याण करनेवाला भाषण करें ॥

(मा) No (भ्राता) brother (द्विक्षत्) should hate his (भ्रातरं) brother, (उत) so also (मा) no (स्वसा) sister should hate (स्वसार) her sister. (भूत्वा) Being (सम्यञ्चः) unanimous and (सव्रताः) with one intent (वदत) speak ye (वाचं) your speech (भद्रया) auspiciously.

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

द्विक्षत्– (द्विष्) द्वेष करना ।
स्वसा– (स्वसृ) = बहिन ।
भ्राता– (भ्रातृ) = भाई ।
सम्यञ्चः– मिलजुलकर रहनेवाले ।
सव्रताः– एक कार्य मिलजुलकर करनेमें दक्ष ।
भद्रा– कल्याणकारक ।

येन॑ दे॒वा न वि॒यन्ति॒ नो च॑ विद्वि॒षते॑ मि॒थः ।
तत् कृ॒ण्मो ब्रह्म॑ वो गृ॒हे सं॒ज्ञानं॒ पुरु॑षेभ्यः ॥४॥

पदानि–येन॑ । दे॒वाः । न । वि॒ऽयन्ति॑ । नो इति॑ । च॒ । वि॒ऽद्वि॒षते॑ । मि॒थः ।

तत् । कृ॒ण्म॒ः । ब्रह्म॑ । व॒ः । गृ॒हे । स॒म्ऽज्ञान॑म् । पुरु॑षेभ्यः ॥४॥

अन्वयः–येन देवाः न वियन्ति । मिथः च नो विद्विषते । तत् संज्ञानं ब्रह्म वः गृहे पुरुषेभ्यः कृण्मः ।

अर्थ– (येन) जिससे (देवाः) दिव्य जन (न वियन्ति) विरोध नहीं करते, तथा (मिथः) परस्पर (नो विद्विषते) द्वेष भी नहीं करते (तत्) उस (सं–ज्ञानं ब्रह्म) उत्तम ब्रह्मज्ञान का



उपदेश (वः गृहे) आपके घरके (पुरुषेभ्यः) सब मनुष्योंको (कृण्मः) करते हैं ।

भावार्थ- जिस ज्ञानसे आपसका विरोध नहीं बढता और जिससे परस्पर वैर घटता है, वह ब्रह्मज्ञानही हैं । वह ज्ञान घरमें, ग्राममें, राष्ट्रमें और विश्वमें रहनेवाले स्त्रीपुरुषोंको होना चाहिए, जिससे विश्वमें शान्ति रहेगी और कलह नहीं होंगे ।

(कृण्मः) We make (तत्) that (संज्ञानं ब्रह्म) real knowledge (पुरुषेभ्यः) for men (वः गृहे) in your house, (येन) by which knowledge (देवाः) divines (न वियन्ति) do not sever from (नो) nor (विद्विषते) hate (मिथः) each other.

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ ।

वियन्ति- वि+या = विरुद्ध दिशासे जाना, विरोध करना ।

संज्ञानं- उत्तम ज्ञान, एकताका ज्ञान ।

ब्रह्म- यथार्थ ज्ञान ।

पुरुषः- पुरुष, मनुष्य, मानव ।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट
संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः ।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत
सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ॥ ५ ॥

पदानि– ज्यायस्वन्तः । चित्तिनः । मा । वि । यौष्ट । सम्ऽराधयन्तः । सऽधुराः । चरन्तः ।

अन्यः । अन्यस्मै । वल्गु । वदन्तः । आ । इत । सध्रीचीनान् । वः । सम्ऽमनसः । कृणोमि ॥५॥

अन्वयः– ज्यायस्वन्तः, चित्तिनः, संराधयन्तः, सधुराः चरन्तः, मा वि यौष्ट । अन्यः अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत । सध्रीचीनान् वः संमनसः कृणोमि ॥

अर्थ—(ज्यायस्वन्तः) श्रेष्ठोंके साथ रहते हुए, (चित्तिनः) स्वयं विद्वान् होकर, (सं-राधयन्तः) सम्यक् रीतिसे कार्य-सिद्धिके प्रयत्नमें तत्पर रह कर, (सधुराः) कार्यकी धुरा सिर पर लेकर, (चरन्तः) आगे बढते हुए (मा वि-यौष्ट) जुदा मत होओ । (अन्यः अन्यस्मै) एक दूसरेके साथ (वल्गु) मीठा (वदन्तः) भाषण करते हुए (एत) आगे बढो । (सध्रीचीनान्) एक उद्देश्यसे कार्य करनेवाले (वः) आपको (संमनसः) उत्तम एक विचारवाले मनसे युक्त (कृणोमि) मैं करता हूँ ॥

भावार्थ- जो श्रेष्ठ आप्त पुरुष होंगे, उनके साथ रहो, अपने मनोंको सुसंस्कारसंपन्न करो, एक कार्य को मिलजुलकर एक विचारसे करो, कार्यका भार अपने सिरपर लेनेको सदा उद्यत रहो, आपसमें विरोध न खडा करो, परस्पर मीठा भाषण करो, एक ध्येयकी सिद्धिके लिये तत्परता के साथ लगो, एक मनोभावसे एकताके लिए यत्न करो; यही सत्यज्ञान है, अतः सबको यही ज्ञान दो।

(मा वियौष्ट) Be ye not divided; (ज्यायस्वन्तः) having superiors (to guide you), (चित्तिनः) with common intent, (सं राधयन्तः) accomplishing together, (सधुराः चरन्तः) moving on with joint labour, (एत) come ye hither; (वदन्तः) speaking to (अन्यः अन्यस्मै) one another what is (वल्गु) agreeable, I (कृणोमि) make you (सध्रीचीनान्) united and (संमनसः) well-minded.

पिप्पलाद-संहिता-पाठः।

ज्यायस्वन्ताश्चित्तिनो मा वि यौष्ट
संराधयन्तः सुधिराश्चरन्तः।
अन्योऽन्यस्मै वल्गु वदन्तो यात
समग्राः स्थ सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि॥

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

जायस्वन्तः-ज्यायस्-वन्तः; श्रेष्ठोंसे युक्त, जिनमें बडे महात्मा रहते हैं ऐसे।

चित्तिनः-चित्तिन्=शुभ संस्कारोंसे युक्त चित्तवाले, जिनके अन्तःकरण शुभ हैं।

वियौष्ट-वि+यु= जुदा होना, पृथक् होना।

संराधयन्तः-सं= एक होकर, मिलकर। (राधयन्तः) सिद्धिके लिये प्रयत्न करनेवाले। राध्=सिद्ध करना।

सधुराः-धुराको उठानेवाले, मुख्य कार्यका भार सिरपर लेनेवाले।

वल्गु-मधुर, मीठी, आनन्द देनेवाली।

सध्रीचीनः- सध्र्यञ्च्=एक उद्देश्यसे कार्य करनेवाले, एक केन्द्रके अनुगामी।

संमनसः—एक मनवाले।

सुधिराः-सुधीराः=उत्तम बुद्धिमान्, उत्तम संमति देनेवाले।

समग्राः- सं अग्राः = जिनका एक अन्तिम स्थान ध्येय है।

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः
समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमि-
वाभितः ॥ ६ ॥

पदानि– समानी। प्रऽपा। सह। वः। अन्नऽभागः। समाने। योक्त्रे। सह। वः। युनज्मि। सम्यञ्चः। अग्निम्। सपर्यत। अराः। नाभिम्ऽइव। आभितः ॥६॥

अन्वयः- वः प्रपा समानी। वः अन्नभागः सह। वः समाने योक्त्रे सह युनज्मि। सम्यञ्चः अग्निं सपर्यत। नाभिं अभितः अराः इव॥

अर्थ- (वः) आप सबकी (प्रपा) प्याऊ (समानी) समान- सबकी एक- हो। (वः) आप सबका (अन्नभागः) अन्नसेवन (सह) साथ साथ मिलकर, हो । (वः) आप सबको (समाने योक्त्रे) एक ही बंधनसे (सह) साथ साथ (युनज्मि) जोडता हूँ। (सम्यञ्चः) इकट्ठे होकर (अग्निं) अग्निकी (सपर्यंत) उपासना करो। (इव) जैसे (नाभिं अभितः) नाभिके चारों ओर (अराः) अरे होते हैं।

भावार्थ— आप सबका जलपान करनेका स्थान एक हो। आप सब साथ साथ बैठकर भोजन करो। आप सब एक कार्य सिद्ध करनेके लिए मिलकर लग जाओ। आप सब एक स्थानपर मिलकर उपासना करो। आग्निमें हवनके लिये अग्निके चारों ओर ऐसे बैठ जाओ, जैसे नाभिके चारों ओर अरे होते हैं।

(वः) Your (प्रपा) drinking place be (समानी) the same; (वः) your (अन्नभागः) share of food be (सह) in common; (समाने) in the same (योक्त्रे) harness do I (युनज्मि) yoke (वः) you (सह) to-gether. (सपर्यत) Worship ye (अग्निं) the FIRE (सम्यञ्चः) united, (अराः इव) like spokes (नाभिं अभितः) about a nave.

पिप्पलाद-संहिता-पाठः।

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः
समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा
नाभिमिवाभितः ॥

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

प्रपा- पियाऊ, पानी पीनेका स्थान।

अन्नभागः-अन्नका भाग, भोजन।

योक्त्रं-जिससे धुराके साथ पशु बाँधे जाते हैं, वह रस्सी, या चमडेकी पट्टी।

सम्यञ्चः- मिलकर।

सपर्यत- उपासना करो, पूजा करो।

नाभिः-चक्रका मध्यभाग।जिसमें अरे लगे होते हैं।

अराः-अरे, आरे।

आभृताः- चारों ओर अच्छी तरहसे भरे हुए।

सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोम्येक-
श्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः
सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥७॥

पदानि--सध्रीचीनान्। वः। सम्ऽमनसः। कृणोमि। एकऽश्नुष्टीन्। सम्ऽवननेन। सर्वान्। देवाः ऽ इव। अमृतम्। रक्षमाणाः। सायम्ऽप्रातः। सौमनसः। वः। अस्तु ॥७॥

अन्वयः--वः सर्वान् संवननेन सध्रीचीनान्, संमनसः, एकश्नुष्टीन् कृणोमि। अमृतं रक्षमाणाः देवा इव वः सायंप्रातः सौमनसः अस्तु ॥

अर्थ-(वः) आप (सर्वान्) सबको (संवननेन) आपसके प्रेमसे (सध्रीचीनान्) एक कार्य में तत्पर, (संमनसः) एक मनवाले, और (एकश्नुष्टीन्) एक संगठन में रहनेवाले (कृणोमि) करता हूँ। (अमृतं रक्षमाणाः) अमृतकी रक्षा करनेवाले (देवाः इव) जैसे देव एक मतसे रहते हैं, वैसे (वः) आप सबका (सायं प्रातः) सायंप्रातः (सौमनसः) उत्तम मन (अस्तु) रहे।

भावार्थ-आप सब परस्पर सहायता करते हुए प्रेम करो, एक कार्य में लग जाओ, एक विचार मनमें रखो, एक संगठन में रहो, मनमें उत्तम विचार धारण करो। ऐसा करने से तुम वैसे दिव्य बनोंगे, जैसे अमृतके रक्षक होते हैं।

I (कृणोमि) make (वः सर्वान्) ye all (सध्रीचीनान्) united, (संमनसः) well-minded and (एकश्नुष्टीन्) followers of one sole leader (संवननेन) by conciliation, (इव) as (देवाः) the Devas (रक्षमाणाः) who guard, (अमृतं) immortality, at (प्रातः) morn and (सायं) eve. May (वः) ye (अस्तु) be (सौमनसः) kind-hearted.

पिप्पलाद-संहिता-पाठ।

सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीं संवननेन सहृदः।
देवा इवेदमृतं रक्षमाणाः सायं प्रातः सुसमितिर्वोऽस्तु ॥

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

एकश्नुष्टिः-एक संघमें रहनेवाले, एक नेताके अनुयायी। (श्नुष्टि= राशि, संघ, नाप)

संवननं-(सं=एक होकर; वननं=सेवन) एक होकर सेवा करना, परस्पर प्रेमसे, ऐक्यभावसे सहायता करना। वन-संभक्तौ; वन्=सम्यक् भक्ति सम्यक् सेवा, योग्य सहायता करना।

सौमनसः- उत्तम मनका होना।

(पिप्प०) **सहृदः**- सहृदय, समहृदयके भाववाले।

सुसमितिः-उत्तम सभा, उत्तम एकभावका संगठन।

इस सूक्तमें ध्यानमें रखनेयोग्य सुभाषित।

१. **वः सहृदयं**-आपका परस्पर हार्दिक प्रेम हो।

२. **वः सांमनस्यं**-आप सबका उत्तम समान भाववाला मन हो।

३. **वः अविद्वेषं**- आप सबका परस्पर द्वेष न हो।

४. **अन्यो अन्यं अभिहर्यत**-एक दूसरेसे प्रेम करो।

५. **पुत्रः पितुः अनुव्रतः भवतु**-पुत्र पिताके अनुकूल कार्य करनेवाला हो।

६. **पुत्रः मात्रा संमनाः भवतु**= पुत्र माताके साथ अपना मन मिलाकर रखे।

७. **जाया पत्ये मधुमतीं शान्तिवां वाचं वदतु**-पत्नी पतिके साथ मीठा और शान्त भाषण करे।

८. **भ्राता भ्रातरं मा द्विक्षत्**- भाई भाईसे द्वेष न करे।

९. **स्वसा स्वसारं मा द्विक्षत्**- बहिन बहिनका द्वेष न करे।

१०. **भ्राता स्वसारं मा द्विक्षत्**- भाई बहिनका द्वेष न करे।

११. **स्वसा भ्रातरं मा द्विक्षत्**- बहिन भाईका द्वेष न करे।

१२. **सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा**- एक होकर एक कार्य करो।

१३. **भद्रया वाचं वदत**- कल्याण करनेवाला भाषण करो।

१४. येन न वियन्ति, नो च विद्विषते तत् संज्ञानं ब्रह्म– जिससे विरोध नहीं होता और न द्वेष बढता है, उसका नाम सम्यक् ब्रह्म, ज्ञान है।

१५. गृहे पुरुषेभ्यः संज्ञानं— घरके सब मनुष्योंको उत्तम ज्ञान देना चाहिये।

१६. ज्यायस्वन्तः– श्रेष्ठ सत्पुरुषोंके साथ रहो।

१७. चित्तिनः– उत्तम चित्तवाले बनो।

१८. संराधयन्तः– मिलकर एक कार्य करो

१९. मा वि यौष्ट– विभक्त मत् हो।

२०. सुधराः चरन्तः– धुराके स्थानपर रहो, कार्यका भार अपने सिरपर लेकर आगे बढो।

२१. अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदत– एक दूसरेसे मीठा भाषण करो।

२२. वः समानी प्रपा– आपका जलपान करनेका एक ही स्थान हो।

२३. वः सह अन्नभागः– आप सबका साथ साथ भोजन हो।

२४. समाने योक्त्रे सह वः युनज्मि= एकही कार्यमें आप सबको साथ साथ लगाता हूं।

२५. सम्यञ्चः अग्निं सपर्यत= सब मिलकर अग्निकी उपासना करो।

२६. सध्रीचीनान् संमनसः एकश्नुष्टीन् सर्वान् वः कृणोमि– आप सबको मैं एक कार्यमें रत, एक मनवाले, एक संगठन में रहनेवाले करता हूं।

२७. वः सायं प्रातः सौमनसः अस्तु= आप सबका सबेरे शाम उत्तम मन रहे।

शक्तिकी प्रार्थना।

(अथर्व० २।१७।१-७)

[ऋषिः- ब्रह्मा। देवता- प्राणः, अपानः, आयुः। छन्दः- (एकावसानम्) १-६ एकपादासुरी त्रिष्टुप्; ७ आसुरी उष्णिक्।]

ओजो॒ऽस्योजो॑ मे दाः॒ स्वाहा॑ ॥ १ ॥
सहो॑ऽसि॒ सहो॑ मे दाः॒ स्वाहा॑ ॥ २ ॥
बल॑मसि॒ बलं॑ मे दाः॒ स्वाहा॑ ॥ ३ ॥
आयु॑र॒स्यायु॑र्मे दाः॒ स्वाहा॑ ॥ ४ ॥
श्रोत्र॑मसि॒ श्रोत्रं॑ मे दाः॒ स्वाहा॑ ॥ ५ ॥
चक्षु॑रसि॒ चक्षु॑र्मे दाः॒ स्वाहा॑ ॥ ६ ॥
प॒रि॒पाण॑मसि परि॒पाणं॑ मे दाः॒ स्वाहा॑ ॥ ७ ॥

पदानि--
ओजः। अ॒सि॒। ओजः। मे॒। दाः॒। स्वाहा॑ ॥१॥
सहः। अ॒सि॒। सहः। मे॒। दाः॒। स्वाहा॑ ॥ २ ॥
बल॑म्। अ॒सि॒। बल॑म्। मे॒। दाः॒। स्वाहा॑। ३ ॥
आयुः। अ॒सि॒। आयुः। मे॒। दाः॒। स्वाहा॑ ॥ ४ ॥

श्रोत्रम् । असि । श्रोत्रम् । मे । दाः । स्वाहा ॥ ५ ॥
चक्षुः । असि । चक्षुः । मे । दाः । स्वाहा ॥ ६ ॥
परिऽपानम् । असि । परिऽपानम् । मे । दाः । स्वाहा ॥७॥

अर्थ- तू (ओजः) सामर्थ्य है, (मे) मुझे (ओजः दाः) सामर्थ्य प्रदान कर (स्वाहा) यह आशीर्वाद मुझे प्राप्त हो ॥ १ ॥

तू (सहः) शक्ति (असि) है, अतःमुझे शक्ति प्रदान कर। यह आशीर्वाद मुझे प्राप्त हो ॥ २ ॥

तू (बलं) बल है, अतः (मे) मुझे बल प्रदान कर। यह आशीर्वाद मुझे प्राप्त हो ॥३॥

तू (आयुः असि) आयु है, अतः मुझे आयु प्रदान कर ॥४॥

तू (श्रोत्रं) कान अर्थात् श्रवणशक्ति हैं, (मे) मुझे (श्रोत्रं दाः) श्रवणशक्ति प्रदान कर ॥ ४ ॥

तू (चक्षुः) आँख- देखनेकी शक्ति- है, अतः (मे) मुझे आँख-देखनेकी शक्ति प्रदान कर ॥ ५ ॥

तू (परिपाणं) कवच है, (मे) मुझे (परिपाणं) कवच (दाः) दे ॥ ६ ॥

(स्वाहा) यह आशीर्वाद मुझे प्राप्त हो ॥ ७ ॥

Thou (असि) art (ओजः) power. (दाः) Give (मे) me (ओजः) power. (स्वाहा) All hail.

Thou (असि) art (सहः) Might. (दाः) Give (मे) me (ओजः) might. (स्वाहा) All hail.

Thou art (बलं) strength. Give me strength. All hail.

Thou art (आयुः) life. Give me life. (स्वाहा) All hail.

Thou art (श्रोत्रं) ear (power of hearing). Give me ear (power of hearing). All hail.

Thou art (चक्षुः) eye (power of seeing). Give me eye (power of seeing). All hail.

Thou art (परिपाणं) shield. Give me shield. (स्वाहा) All hail.

सबका भावार्थ— हे ईश्वर ! तूही सच्चा सामर्थ्य, शक्ति, बल, आयु, श्रवण-शक्ति, दर्शनशक्ति और रक्षणशक्ति है, इसलिये मुझे ये शक्तियाँ देकर सामर्थ्यवान् बनाओ ।

इस सूक्तके पदोंका अर्थ ।

ओजः–शारीरिक सामर्थ्य ।

सहः– सहनशक्ति, सत्कार्य करनेमें जो कष्ट होते हैं, उनको सहकर सिद्धि होने तक अपना कार्य न छोडनेकी शक्ति ।

बलं–शरीर, मन, बुद्धि और आत्माका सामर्थ्य ।

आयुः–आयुष्य, जन्मसे मृत्युतक की अवधि; इसी आयुके आधारपर अन्य सब बल सहायक होते हैं ।

श्रोत्रं–कान, श्रवणशक्ति ।

चक्षुः–आँख, देखनेकी शक्ति ।

परिपाणं–(परितः पानं, रक्षणं) सब ओर से रक्षण करनेकी शक्ति; कैसाभी शत्रु आया हो, उससे अपनी रक्षा करनेकी शक्ति, कवच ।

स्वाहा–(सु+आह)=उत्तम वचन, आशीर्वाद, शुभ संदेश । (सु+आ+हा) उत्तम प्रकारका, सब ओरका वासना का त्याग, भोगका त्याग । (स्व+आ+

हा) अपने भोगोंका सर्वस्व त्याग। स्वाहा शब्दके अनेक अर्थ हैं। उनमें ये मुख्य हैं।

प्रार्थना।

तेजो॑ऽसि॒ तेजो॒ मयि॑ धेहि वी॒र्य॑मसि वी॒र्यं॒ मयि॑ धेहि॒
बल॑मसि॒ बलं॒ मयि॑ धे॒हि ओजो॒ऽस्योजो॒ मयि॑ धेहि
म॒न्युर॑सि म॒न्युं मयि॑ धेहि॒ सहो॑ऽसि॒ सहो॒ मयि॑ धेहि॥

(वा० यजुर्वेद १९।९)

पदानि– तेज॑ः। अ॒सि॒। तेज॑ः। मयि॑। धे॒हि॒। वी॒र्य॑ऽम्। अ॒सि॒। वी॒र्यं॒ऽम्। मयि॑। धे॒हि॒। बल॑म्। अ॒सि॒। बल॑म्। मयि॑। धे॒हि॒। ओज॑ः। अ॒सि॒। ओज॑ः। मयि॑। धे॒हि॒। म॒न्युः। अ॒सि॒। म॒न्युम्। मयि॑। धे॒हि॒। सह॑ः। अ॒सि॒। सह॑ः। मयि॑। धे॒हि॒॥ ९॥

अर्थ— तू (तेजः) तेजस्वरूप (असि) है, अतः (मयि) मुझमें (तेजः) तेज (धेहि) स्थापन कर। तू (वीर्यं) वीर्यस्वरूप है, अतः मुझमें वीर्य की स्थापना कर। तू (बलं) बलरूप है, अतः मुझमें बल स्थापन कर ! तू (ओजः) सामर्थ्य है, अतः मुझमें सामर्थ्य स्थापन कर। तू (मन्युः) उत्साह है, अतः मुझमें उत्साह स्थापन कर। तू (सहः) सहनशक्तिरूप है, अतः मुझमें वह सहन-शक्ति स्थापित कर॥

भावार्थ– हे ईश्वर ! तू तेज, वीर्य, बल, सामर्थ्य, उत्साह और सहन-शक्तिरूप है, अतः मुझमें ये गुण सुरक्षित रखकर मुझे इन सामर्थ्यों से समर्थ बना।

Thou (असि) art (तेजः) lustre, (धेहि) give (मयि) me lustre. Thou art (वीर्यं) manly vigour, give me manly vigour. Thou art (बलं) strength, give me strength. Thou art (ओजः) energy, give me energy. Thou art (मन्युः) zeal, give me zeal. Thou art (सहः) conquering might, give me conquering might.

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ ।

वीर्यम्– वीर्य, पराक्रम, पुरुषशक्ति, पौरुष, सब शरीर का आधार ।

मन्युः– क्रोध, उत्साह, प्रबल, तीव्र इच्छा ।

इयदस्यायुरस्यायुर्मयि धेहि, युङ्ङसि वर्चोऽसि
वर्चो मयि धेह्यूर्गस्यूर्जं मयि धेहि ॥

॥ वा० यजु० १०।२५ ॥

पदानि —इयत् । असि । आयुः । असि । आयुः । मयि । धेहि । युङ् । असि । वर्चः । असि । वर्चः । मयि । धेहि । ऊर्ग् । असि । ऊर्जम् । मयि । धेहि ॥

अर्थः— (इयत्) इतना बडा तू (असि) है । तू (आयुः) आयु है, तू जीवन है, अतः मुझे (आयुः) जीवन (धेहि) दो । तू (युङ्) साथी (असि) है । तू (वर्चः) तेजःस्वरूप है, अतः (मयि) मुझमें तेज (धेहि) स्थापन कर । तू (ऊर्ग्) सामर्थ्य है, अतः मुझमें सामर्थ्य स्थापन कर ।

३

भावार्थ- हे ईश्वर! तू सबसे महान् है, तूही जीवन है, तू ही हमारा सच्चा मित्र है, तूही तेजका स्वरूप है, तूही समर्थ है। अतः मुझमें महत्ता, जीवन, तेजस्विता और सामर्थ्य स्थापन कर और इन शक्तियोंसे मुझे युक्त कर।

(इयत्) So great (असि) art Thou, (आयुः असि) life art Thou, (आयुः मयि धेहि) give me life. (युङ् असि) Mate art Thou, (वर्चः असि) Thou art splendour, give me splendour. (ऊर्ग् असि) Thou art strength, give me strength.

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

इयत्- ऐसा, इतना।
युङ् (युज्)- मित्र सखा।
ऊर्ज् (ऊर्ग्)- बल सामर्थ्य।

तात्पर्य- आत्मामें हि ये सब गुण रहते हैं, ईश्वर में हि ये गुण होते हैं, वहांसे उपासक को ये प्राप्त हों, और उपासक की शक्ति बढे, उपासक समर्थ बने। अपने पिताके समान पुत्र बने।

सुरक्षा ।

(अथर्व० २ । १६ । १–५)

[ऋषिः— ब्रह्मा । देवता–प्राणः, अपानः, आयुः । छन्दः–(एका वसानम्)
१, ३ एकपदासुरी त्रिष्टुप्, २ एकपदासुरी उष्णिक्,
४–५ एकपदासुरी गायत्री ।]

प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा ॥ १ ॥
द्यावापृथिवी उपश्रुत्या मा पातं स्वाहा ॥ २ ॥
सूर्य चक्षुषा मा पाहि स्वाहा ॥ ३ ॥
अग्ने वैश्वानर विश्वैर्मा देवैः पाहि स्वाहा ॥ ४ ॥
विश्वंभर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा ॥ ५ ॥

पदानि— प्राणापानौ । मृत्योः । मा । पातम् । स्वाहा ॥१॥
द्यावापृथिवी इति । उपऽश्रुत्या । मा । पातम् । स्वाहा ॥२॥
सूर्य । चक्षुषा । मा । पाहि । स्वाहा ॥३॥
अग्ने । वैश्वानर । विश्वैः । मा । देवैः । पाहि । स्वाहा ॥४॥
विश्वम्ऽभर । विश्वेन । मा । भरसा । पाहि । स्वाहा ॥५॥

अर्थ- १. हे (प्राणापानौ) प्राण और अपान ! (मा) मुझे (मृत्योः) मृत्युसे (पातं) सुरक्षित कीजिये । (स्वाहा) उत्तम आशीर्वाद हो ।

२. (द्यावापृथिवी) हे द्युलोक और पृथिवी ! (मा) मुझे

(उपश्रुत्या) श्रवण से उत्पन्न होनेवाले पापसे (पातं) सुरक्षित रखिये। (स्वाहा) आशीर्वाद।

३. हे सूर्य ! (चक्षुषा) आँखसे (मा) मुझे (पाहि) सुरक्षित कर। (स्वाहा) आशीर्वाद ।

४. हे (वैश्वानर अग्ने) विश्वके नेता अग्ने ! (विश्वैः देवैः) सब देवों के साथ (मा) मुझे (पाहि) सुरक्षित कर । आशीर्वाद ।

५.हे (विश्वंभर) विश्वके पोषक ! (विश्वेन भरसा) संपूर्ण पोषक शक्तिसे (मा पाहि) मेरी रक्षा कर । आशीर्वाद ।

(पातं) Guard (मा) me (मृत्योः) from death, (प्राणापानौ) O inhaling and exhaling ! (स्वाहा) All bliss.

Guard me from (उपश्रुत्याः) over hearing, O Earth and heaven ! All hail.

O (सूर्य) Sun ! (पाहि) Protect (मा) me (चक्षुषा) with eye. All hail.

O Vaishwanara Agni ! (विश्वैः देवैः) With all deities (मा पाहि) protect me. All hail.

(पाहि) Preserve (मा) me (विश्वेन भरसा) with all care, O (विश्वंभर) all sustainer ! All hail.

भावार्थ- अयोग्य बातें सुनने आदिसे जो दोष होता है, वह दूर होना चाहिये ।

इस सूक्तके पदोंका अर्थ ।

उपश्रुत्या- श्रवण, सुनना ।

वैश्वानरः- विश्वमें मुख्य, विश्वका नेता ।

विश्वंभर- विश्वपोषक, विश्वका भरणपोषण करनेवाला ।

भरस्- पोषण-शक्ति ।

श्रद्धा ।

(ऋ० १० । १५१ । १–५)

[ऋषिका— कामायनी श्रद्धा । देवता–श्रद्धा । छन्दः– अनुष्टुप् ।]

श्र॒द्धया॒ग्निः समि॑ध्यते श्र॒द्धया॑ हूयते ह॒विः ।
श्र॒द्धां भग॑स्य मू॒र्धनि॒ वच॒सा वेद॑यामसि ॥ १ ॥

पदानि– श्र॒द्धया॑ । अ॒ग्निः । सं । इ॒ध्य॒ते । श्र॒द्धया॑ । हू॒य॒ते । ह॒विः । श्र॒द्धां । भग॑स्य । मू॒र्धनि॑ । वच॑सा । आ । वे॒द॒या॒म॒सि ॥ १ ॥

अन्वयः— अग्निः श्रद्धया सं इध्यते । हविः श्रद्धया हूयते । भगस्य मूर्धनि श्रद्धां वचसा आ वेदयामसि ॥

अर्थ– (अग्निः) अग्नि (श्रद्धया) श्रद्धासे (सं इध्यते) प्रदीप्त किया जाता है । (हविः) हविर्द्रव्य (श्रद्धया) श्रद्धासे (हूयते) हवन किया जाता है । (भगस्य मूर्धनि) धनके सिरपर (श्रद्धां) श्रद्धाको (वचसा) घोषणासे (आवेदयामसि) निवेदन करते हैं ।

(श्रद्धया) By faith (अग्निः) fire (सं इध्यते) is kindled, (श्रद्धया) through faith (हविः) oblation (हूयते) is offered up. (आवेदयामसि) We declare with (वचसा) proclamation that the (श्रद्धां) faith is (मूर्धनि) on the head of (भगस्य) wealth.

प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः ।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि ॥२॥

पदानि-- प्रियं । श्रद्धे । ददतः । प्रियं । श्रद्धे । दिदासतः । प्रियं । भोजेषु । यज्वऽसु । इदं । मे । उदितं । कृधि ॥२॥

अन्वयः- हे श्रद्धे ! ददतः प्रियं, हे श्रद्धे ! दिदासतः प्रियम् । भोजेषु यज्वसु प्रियम् । मे इदं उदितं कृधि ॥

अर्थ- हे श्रद्धे ! (ददतः) दान देनेवालेका (प्रियं) प्रिय कर । हे श्रद्धे ! (दिदासतः) दान देनेकी इच्छा करनेवाले का प्रिय कर । (भोजेषु) भोजन करानेवाले और (यज्वसु) यज्ञ करने-वालोंका भी प्रिय कर और (मे) मेरा (इदं) यह (उदितं कृधि) कहा हुआ सफल कर ।

(श्रद्धे) O Faith ! (प्रियं) Bless thcu the man who (ददतः) gives. (प्रियं) Bless thou the man who (दिदासतः) fain would give. (प्रियं) Bless thou the (भोजेषु यज्वसु) liberal worshipers. Make (मे इदं) this (उदितं) proclamation of mine blessed.

यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे ।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि ॥३॥

पदानि-- यथा । देवाः । असुरेषु । श्रद्धां । उग्रेषु । चक्रिरे । एवं । भोजेषु । यज्वऽसु । अस्माकं । उदितं । कृधि ॥३॥

अन्वयः--यथा देवाः उग्रेषु असुरेषु श्रद्धां चक्रिरे। एवं यज्वसु भोजेषु अस्माकं उदितं कृधि॥

अर्थ- (यथा) जैसे (देवाः) देव (उग्रेषु) शूर (असुरेषु=असु+र) प्राणरक्षकोंपर (श्रद्धां चक्रिरे) श्रद्धा करते रहे, (एवं) वैसेही (यज्वसु भोजेषु) यज्ञ करनेवाले तथा भोजन करनेवालों में (अस्माकं) हम सबका (उदितं) उदय (कृधि) कर।

भावार्थ— दिव्य जन शूर पुरुषोंपर श्रद्धा रखते हैं और समझते हैं कि येही सबके जीवन और धनादि की रक्षा करेंगे। वैसे ही यज्ञ कराना और भोजन देनेमें हम सबका उदय हो।

(यथा) Even as (देवाः) the Divines (श्रद्धां चक्रिरे) maintain faith in the (उग्रेषु) mighty (असुरेषु=असु-रेषु) guards of life, (एवं) so (कृधि) make (अस्माकं उदितं) this uttered wish of ours true for the (यज्वसु भोजेषु) liberal worshipers.

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्य१याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु॥४॥

पदानि-- श्रद्धां। देवाः। यजमानाः। वायुऽगोपाः। उप। आसते। श्रद्धां। हृदय्यया। आऽकूत्या। श्रद्धया। विन्दते। वसु॥४॥

अन्वयः-- देवाः वायुगोपाः यजमानाः श्रद्धां उपासते। हृदय्यया आकूत्या श्रद्धां उपासते। श्रद्धया वसु विन्दते॥

अर्थ- (देवाः) दिव्य जन (वायुगोपाः) प्राणका रक्षण करनेवाले, (यजमानाः) यजमान (श्रद्धां) श्रद्धाकीही उपासना करते हैं।

(हृदय्यया आकूत्या) हृदय के संकल्पसे (श्रद्धां) श्रद्धाकी ही उपासना होती है। श्रद्धासेही (वसु) धन (विन्दते) प्राप्त होता है।

(वायुगोपाः) Protected by breath, (देवाः यजमानाः) Divines and sacrificers (श्रद्धां उपासते) draw near to Faith. (हृदय्यया आकूत्या) By yearning of heart, man winneth (श्रद्धां) faith. By (श्रद्धा) faith he (विन्दते) gets (वसु) wealth.

श्र॒द्धां प्रा॒तर्ह॑वामहे श्र॒द्धां म॒ध्यंदि॑नं॒ परि॑।
श्र॒द्धां सूर्य॑स्य नि॒ऽम्रुचि॑ श्र॒द्धे श्रद्धा॑पये॒ह नः॑ ॥५॥

पदानि— श्र॒द्धां। प्रा॒तः। ह॒वा॒म॒हे॒। श्र॒द्धां। म॒ध्यंदि॑नं। परि॑। श्र॒द्धां। सूर्य॑स्य। नि॒ऽम्रुचि॑। श्रद्धे॑। श्रत्। धा॒प॒य॒। इ॒ह। न॒ः॥

अन्वयः— प्रातः श्रद्धां हवामहे, मध्यंदिनं श्रद्धां हवामहे, सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धां हवामहे। हे श्रद्धे! नः इह श्रद्धापय॥

अर्थ— (प्रातः) प्रातःकाल (श्रद्धां) श्रद्धाका (हवामहे) आवाहन करते हैं, (मध्यंदिनं) मध्यदिन में श्रद्धाका आवाहन करते हैं, (सूर्यस्य निम्रुचि) सूर्य के अस्त के समय श्रद्धा का आवाहन करते हैं। हे (श्रद्धे) श्रद्धा देवि! (नः) हमें (इह) इस संसार में (श्रद्धापय) श्रद्धासे युक्त कर।

(श्रद्धां) Faith (प्रातः) in the early morning, (श्रद्धां) faith (मध्यंदिनं परि) at the noonday (हवामहे) will we invoke, (श्रद्धां) faith (सूर्यस्य निम्रुचि) at the setting of the Sun. O (श्रद्धे) faith! (श्रद्धापय इह) endow (नः) us with faith.

मन आवर्तनम् ।

(ऋ० १०।५८।१-१२)

(ऋषयः- बन्धुःश्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः । देवता- मनः ।
छन्दः- अनुष्टुप् ।)

यत्ते॑ य॒मं वै॑वस्व॒तं मनो॑ ज॒गाम॑ दूर॒कम् ।
तत्त॒ आ व॑र्तयामसी॒ह क्षया॑य जी॒वसे॑ ॥ १ ॥

पदानि- यत् । ते॒ । य॒मं । वै॒व॒स्व॒तं । मनः॑ । ज॒गाम॑ । दू॒र॒कं । तत् । ते॒ । आ । व॒र्त॒या॒म॒सि॒ । इ॒ह । क्षया॑य । जी॒वसे॑ ॥१॥

अन्वयः- यत् ते मनः दूरकं वैवस्वतं यमं जगाम, तत् ते क्षयाय जीवसे इह आ वर्तयामसि ॥

अर्थ- (यत्) जो (ते) तेरा (मनः) मन (दूरकं) बहुत दूर (वैवस्वतं यमं) विवस्वानके पुत्र यम- मृत्युके पास (जगाम) गया था, (तत्) उस मनको (ते) तेरे पास तेरे (क्षयाय) निवासके लिये और तेरे (जीवसे) जीवनके लिये (इह) यहां (आ वर्तयामसि) लौटा लाते हैं ।

भावार्थ- मनुष्यका जो मन प्रायः मृत्युके अधीन, मृत्युके ही विचार करनेवाला, मृत्युकीहि इच्छा करनेवाला बना होता है, उस मनको उस मृत्युके विचारसे वापस लाते हैं और अच्छे विचारमें स्थिर करते हैं, इसलिये कि यह मनुष्य यहां सुखसे आनन्दपूर्वक जीवित रहे और अपना कार्य व्यवहार उत्तम रीतिसे करे ।

विवस्वान्- सूर्यका नाम है। उससे बननेवाला यम, काल अथवा मृत्यु है। सूर्यसे जीवन अथवा आयु नापते हैं, इतने वर्षोंका इसका जीवन आदि परिमाण सूर्यसे ही होता है। दिन, पक्ष, मास, वर्ष सूर्यके द्वारा होता है। 'काल' का नाम मृत्युही है।

(ते) Thy (मनः) mind, that (जगाम) went (दूरकं) far away (यमं) to Yama, (वैवस्वतं) Vivasvan's son, (आवर्तयामसि) we cause to return (ते) to thee again, that thou mayest (जीवसे) live and (क्षयाय) sojourn (इह) here.

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१. यमं- नियमन करनेवाला, प्रबंध करनेवाला, स्वाधीन रखनेवाला।
२. वैवस्वतं- विवस्वान् के साथ संबन्ध रखनेवाला, विवस्वान्-सूर्य।
३. मनः- मनन करनेका साधन, अन्तःकरण।
४. आवर्त- (आवृत्) = वापस लाना, पीछे लाना।
५. क्षय- निवास, स्थिति, रहना, घर।
६. जीवसे- जीवनके लिये।

यत्ते दिवं यत्पृथिवीं मनो जगाम दूरकम्।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥२॥

पदानि- यत्। ते। दिवं। यत्। पृथिवीं। मनः। जगाम। दूरकं। तत्। ते। आ। वर्तयामसि। इह। क्षयाय जीवसे॥२॥

अर्थ- (यत् ते मनः) जो तेरा मन (दूरकं दिवं) दूर द्युलोक तक (यत् पृथिवीं जगाम) जो पृथ्वीपर भटकता है, (तत् ते)

उस मनको तेरे पास (इह क्षयाय जीवसे) यहां तेरा निवास हो और तू जीवित रह इसलिये (आ वर्तयामसि) हम वापस लाते हैं।

भावार्थ— जो मन स्वर्ग में तथा पृथ्वीपर भटकता रहता है, उस मनको यहां उस मनुष्यके अन्तःकरणमें वापस लाकर स्थिर शान्त और सुविचारी करते हैं, जिस से यह मनुष्य दीर्घ आयुतक जीवित रहे और यहां के कार्य उत्तम करके कृतार्थ हो जावे।

Thy mind, that went far away, that passed away (पृथिवीं) to earth and (दिवं) heaven, we cause to return to thee again that thou mayest live & sojourn here.

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१. दिवं–(द्यौः दिव्) स्वर्ग, आकाश।
२. पृथिवी– भूमि।
३. क्षय– निवास, सुखसे निवास।
४. जीवसे– जीवन, दीर्घ जीवन, दीर्घ आयु।

यत्ते भूमिं चतुर्भृष्टिं मनो जगाम दूरकम्।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥३॥

पदानि— यत्। ते। भूमिं। चतुःऽभृष्टिं। मनः। जगाम। दूरकं। तत्। ते। आ। वर्तयामसि। इह। क्षयाय। जीवसे ॥ ३ ॥

अर्थ— (यत् ते मनः) जो तेरा मन (दूरकं) बहुत दूर (चतुःभृष्टिं भूमिं) चारों दिशाओंवाली भूमिके प्रति (जगाम)

गया है, उस मनको तेरे पास दीर्घ जीवन और सुस्थितिके लिये वापस लौटा लाते हैं।

भावार्थ– मनुष्यका जो मन भूमिपर विविध क्षेत्रोंमें जो व्यर्थ भटकता रहता है, उसको एक स्थानपर स्थिर करने के लिये वापस लाते हैं, इसलिये कि इससे इस मनुष्यको दीर्घायु प्राप्त हो और यहां उसका उत्तम निवास हो।

चतुःभृष्टिः= (चतुः) चार। भृष्टिः= नोक, कोना, बिन्दु, भूनना। भूना हुआ धान्य।

Thy mind, that went far away, (चतुर्भृष्टिं भूमिं) to the four corners of the earth, we cause to return to thee again that thou mayest live and sojourn here.

यत्ते चतस्रः प्रदिशो मनो जगाम दूरकम्।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे॥ ४॥

पदानि— यत्। ते। चतस्रः। प्रऽदिशः। मनः। जगाम। दूरकं। तत्। ते। आ। वर्तयामसि। इह। क्षयाय। जीवसे॥ ४॥

अर्थ– जो तेरा मन बहुत दूर (चतस्रः प्रदिशः) चारों दिशा–उपदिशाओंमें (जगाम) भटकता रहता है, उस मनको तेरे पास (आवर्तयामसि) वापस लाते हैं, इस लिये कि यहां तेरा उत्तम रीतिसे (क्षयाय) निवास हो और (जीवसे) तुझे दीर्घ जीवन प्राप्त हो।

Thy mind, that went far away to the (चतस्रः प्रदिशः) four quarters of the world, we cause to return to thee again that thou mayest live and sojourn here.

यत्ते समुद्रमर्णवं मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ५ ॥

पदानि– यत् । ते । समुद्रं । अर्णवं । मनः । जगाम । दूरकं । तत् । ते । आ । वर्तयामसि । इह । क्षयाय । जीवसे ॥ ५ ॥

अर्थ– जो तेरा मन दूर दूर तक (समुद्रं अर्णवं) सागर महासागर तक (जगाम) भटकता रहता है, उस मनको तेरे पास तेरे (क्षयाय) निवासके लिये और (जीवसे) तेरी दीर्घ आयुके लिये (आवर्तयामसि) वापस लौटा लाते हैं ।

Thy mind, that went far away, away unto the (समुद्रं अर्णवं) billowy sea, we cause to return to thee again, that thou mayest live and sojourn here.

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ ।

१. समुद्रः– समुद्र ।
२. अर्णवः– महासमुद्र ।

यत्ते मरीचीः प्रवतो मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ६ ॥

पदानि- यत् । ते । मरीचीः । प्रऽवतः । मनः । जगाम । दूरकं । तत् । ते । आ । वर्तयामसि । इह । क्षयाय । जीवसे ॥ ६ ॥

अर्थ- जो तेरा मन बहुत दूरतक (प्रवतः मरीचीः) विशेष गतिवाली किरणोंके पीछे पीछे (जगाम) भटकता रहता है, उस तेरे मनको तेरे पास वापस लाते हैं, इसलिये कि इससे तुझे दीर्घायु प्राप्त होवे और तेरा निवास यहां सुखसे होवे।

Thy mind, that went far away to beams (प्रवतः मरीचीः) of light that flash and flow, we cause to return to thee again, that thou mayest live & sojourn here.

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१. प्रवतः— विशेष गतिमान्, शिखर, ऊंचा भाग, उतराईका पहाडका भाग।
२. मरीचीः— किरणें।

यत्ते अपो यदोषधीर्मनो जगाम दूरकं।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥७॥

पदानि- यत् । ते । अपः । यत् । ओषधीः । मनः । जगाम । दूरकं । तत् । ते । आ । वर्तयामसि । इह । क्षयाय । जीवसे ॥७॥

अर्थ- जो तेरा मन दूरतक (आपः) जलों और (ओषधीः) औषधि-वनस्पतियोंके पास दौडता है, उसको हम तेरे पास

वापस लाते हैं, इसलिये कि उससे तेरा (क्षयाय) निवास सुखसे हो और तुझे (जीवसे) दीर्घ जीवन प्राप्त हो ।

ओषधी-(दोष + धीः) दोषों रोगों मलों को धोनेवाली । शरीरके दोषों का नाश करनेवाली ओषधीयां होती हैं ।

मनुष्यका मन कमजोर होनेसे जलचिकित्सा और औषधी-सेवनमें लगता है । यदि वह मन अपने आन्तरिक शक्तिमें ही लग जाय और वहीं स्थिर होवे, तो मनुष्य दीर्घायु हो सकता है ।

Thy mind, that went far away, went to the (आपः) waters, (ओषधीः) and to the plants, we cause to return to thee again, that thou mayest live & sojourn here.

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ-

१ ओषधीः-(दोषधीः) दोषोंको, रोगोंको दूर करनेवाली वनस्पति.

यत्ते सूर्यं यदुषसं मनो जगाम दूरकं ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥८॥

पदानि- यत् । ते । सूर्यं । यत् । उषसं । मनः । जगाम । दूरकं । तत् । ते । आ । वर्तयामसि । इह । क्षयाय । जीवसे ॥ ८ ॥

अर्थ-- जो तेरा मन दूरके सूर्य और (उषसं) उषाके प्रति (जगाम) दौडता रहता है, उसको तेरे (क्षयाय) निवासके लिये और (जीवसे) तेरी दीर्घायुके लिये हम (आवर्तयामसि) वापस लाते हैं ।

Thy mind, that went far away, that visited (सूर्यं) the Sun and (उषसं) Dawn, we cause to return to thee again that thou mayest live and sojourn here.

उषा- उषःकाल, सूर्योदयके पूर्वका समय।

यत्ते पर्वतान्बृहतो मनो जगाम दूरकं।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥९॥

पदानि- यत्। ते। पर्वतान्। बृहतः। मनः। जगाम। दूरकं। तत्। ते। आ। वर्तयामसि। इह। क्षयाय। जीवसे ॥९॥

अर्थ- जो तेरा मन दूरतक (बृहतः पर्वतान्) बडे बडे पहाडों और पर्वतों में घूमता रहता है, उसको तेरे निवास और दीर्घायु के लिये तेरे पास वापस लाते हैं।

Thy mind that went far away, away to the (बृहतः पर्वतान्) lofty mountain heights, we cause to return to thee again, that thou mayest live and sojourn here.

पर्वत-(पर्ववान्) = पहाड, पर्वत।

यत्ते विश्वमिदं जगन्मनो जगाम दूरकं।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥१०॥

पदानि-- यत् । ते । विश्वं । इदं । जगत् । मनः । जगाम । दूरकं । तत् । ते । आ । वर्तयामसि । इह । क्षयाय । जीवसे ॥१०॥

अर्थ-जो तेरा मन दूरदूर (इदं विश्वं जगत्) इस संपूर्ण जगत् में (जगाम) भटका रहता है, उस तेरे मनको (क्षयाय) तेरे निवासके लिये और तेरे (जीवसे) दीर्घायुके लिये वापस तेरे पास लाते हैं।

१ जगत् = जंगम, हिलनेवाला।

२ विश्व = सर्व, सब, विश्व।

Thy mind, that went far away, into (इदं) this (विश्वं) all (जगत्) that lives and moves, we cause to return to thee again, that thou mayest live and sojourn here.

१ विश्वं = संपूर्ण विश्व।

२ जगत् = हलचल करनेवाला, जंगम वस्तुमात्र, जगत्।

यत्ते परा: परावतो मनो जगाम दूरकं।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥११॥

पदानि-- यत् । ते । पराः । परावतः । मनः । जगाम दूरकं। तत् । ते । आ । वर्तयामसि । इह । क्षयाय । जीवसे ॥११॥

अर्थ- जो तेरा मन दूरदूर तक (पराः परावतः) दूर से दूरके भागोंमें भटकता रहता है, उसको तेरा निवास होने और तुझे दीर्घ जीवन प्राप्त होने के लिये वापस लाते हैं।

Thy mind that went far away (पराः परावतः) to distant realms beyond our ken, we cause to return to thee again, that thou mayest live and sojourn here.

१ पर = श्रेष्ठ, दूरका, उच्च, ऊपरका ।
२ परावतः = अत्यंत दूरका ।

यत्ते॑ भू॒तं च॑ भव्यं॑ च॒ मनो॑ ज॒गाम॑ दू॒र॒कं ।
तत्त॒ आ व॑र्तयामसी॒ह क्षया॑य जी॒वसे॑ ॥१२॥

पदानि-- यत् । ते॒ । भू॒तं । च॒ । भव्यं॑ । च॒ । मनः॑ । ज॒गाम॑ । दू॒र॒कं । तत् । ते॒ । आ । व॒र्त॒या॒म॒सि॒ । इ॒ह । क्षया॑य । जी॒वसे॑ ॥१२॥

अर्थ- जो तेरा मन दूरदूर तक (भूतं) भूतकालमें तथा (भव्यं) भविष्य कालमें (जगाम) जाता रहता है, उसको हम तेरे (क्षयाय) निवासके लिये और (जीवसे) तेरी दीर्घायुके लिये तेरे पास वापस लाते हैं ।

जो मन भूतकाल में हि भटकता रहता है, हमने ऐसा किया था और वैसा किया था, ऐसा मनमें कह कर मौज करता है, तथा भविष्यकालमें दौड मारता है, ऐसा करुंगा और ऐसा होगा, ऐसे मनके कीले आसमानमें बनाता रहता है । ये दोनों ख्याली विचारोंकी दौड व्यर्थ है । जो आत्मोन्नतिका कार्य करना हो, वह झट करो और अपने उदय का यत्न करो ।

इस सूक्तमें मनकी चञ्चलता हटानेका साधन कहा है । मन इधरउधर भटकने लगा, तो उसको (आवर्तय) वापस लाओ और एक स्थानमें स्थिर करो, जिससे दीर्घायु मिलेगी और जीवनभी सुखमय होगा ।

Thy mind, that went far away, (भूतं) to all that was, (भव्यं) that is to be, we cause to return to thee again, that thou mayest live and sojourn here.

१ भूतं = भूतकाल, जो हो चुका है।
२ भव्यं = भविष्यकाल, जो आनेवाला है।

रोगनाशन।

(अथर्व० ४।१३) (ऋग्वेदे १०।१३७)

(ऋषिः- शन्तातिः; ऋग्वेदे सप्तर्षयः। देवता- चन्द्रमाः, विश्वे देवाः, १ देवाः, २-३ वातः, ४ मरुतः, ६-७ हस्तः। छन्दः- अनुष्टुप्)

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥१॥

पदानि--उत। देवाः। अवऽहितम्। देवाः। उत्। नयथ। पुनः। उत। आगः। चक्रुषम्। देवाः। देवाः। जीवयथ। पुनः ॥१॥

अन्वयः-- हे देवाः, हे देवाः! अवहितं पुनः उत उन्नयथ। हे देवाः, हे देवाः! उत आगः चक्रुषं, पुनः जीवयथ।

अर्थ- हे देवो! हे देवो! आप (अवहितं) नीचे गिरे हुए को (पुनः) फिर (उत) निश्चयपूर्वक (उन्नयथ) ऊपर उठाओ। हे देवो! हे देवो! (उत) और (आगः) पाप (चक्रुषं) करनेवाले को भी (पुनः) फिर (जीवयथ) जीवित करो।

भावार्थ– पतितों को उच्च बनाओ, पापियोंको पवित्र बनाओ और रोगियों को नीरोग करो ।

आगः चक्रुषं= पाप करनेवाला, पाप करनेसे रोग होते हैं, अतः 'रोगी' यह भी इसका अर्थ है ।

अवहित= गिरा हुआ, पतित, सोया पडा, रोगी ।

आगः= पाप । **उन्नय**= उठाओ ।

O Devas! O Devas! (उन्नयथ) raise (पुनः) again him who (अवहितं) is fallen. O Devas! O Devas! (जीवयथ पुनः) restore him to life again who (चक्रुषं) hath committed (आगः) sin.

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः ।
दक्षं ते अन्य आवातु व्य१न्यो वातु यद्रपः ॥२॥

पदानि– द्वौ । इमौ । वातौ । वातः । आ । सिन्धोः । आ । पराऽवतः । दक्षम् । ते । अन्यः । आऽवातु । वि । अन्यः । वातु । यत् । रपः ॥२॥

अन्वयः– इमौ द्वौ वातौ । आ सिन्धोः वातः (एकः) । आ परावतः (वातः अन्यः) । अन्यः ते दक्षं आवातु । अन्यः वि वातु यत् रपः ।

अर्थ– (इमौ) ये (द्वौ) दो (वातौ) वायु हैं । (आ सिन्धोः) समुद्रसे आनेवाला (वातः) वायु एक है और (आ परावतः) दूर भूमीपरसे आनेवाला दूसरा वायु है । इनमें से (अन्यः) एक वायु

(ते) तेरे पास (दक्षं) बल (आवातु) ले आवे और (अन्यः) दूसरा वायु (वि वातु) दूर करे, (यत् रपः) जो दोष हैं।

भावार्थ- दो प्रकार के वायु बहते हैं, एक समुद्रसे आनेवाला वायु है और दूसरा भूमीपर से दूरदूरसे आनेवाला है। पहिला वायु बल देता है और दूसरा वायु मलों को, दोषोंको बहाता है।

Here (इमौ) these (द्वौ) two (वातौ) winds are blowing; (आ सिन्धोः) from sea one (वातः) wind blows and the other (आ परावतः) from a distant land. May (अन्यः) one (आवातु) breathe (दक्षं) energy (ते) to thee and (अन्यः) the other (वि वातु) blow (यत्) whatever (रपः) fault there be.

सिन्धुः= समुद्र।	रपः= दोष, रोगबीज।
परावतः= अति दूर स्थित।	वा= बहना, वायु का चलना।
दक्षं= बल, सामर्थ्य, शक्ति।	

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः।
त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे ॥३॥

पदानि–आ। वात। वाहि। भेषजम्। वि। वात। वाहि। यत्। रपः। त्वम्। हि। विश्वऽभेषज। देवानाम्। दूतः। ईयसे ॥३॥

अन्वयः--हे वात! भेषजं आ वाहि। हे वात! यत् रपः वि वाहि। हे विश्वभेषज! हि त्वं देवानां दूतः ईयसे।

अर्थ- हे (वात) वायो! (भेषजं) औषधि (आ वाहि) यहां ले आ। हे (वात) वायो! (यत् रपः) जो दोष है, वह (वि वाहि) दूर कर। हे (विश्वभेषज) संपूर्ण औषधियों को साथ रखनेवाले! (हि) निःसंदेह (त्वं) तू (देवानां दूतः) देवों का दूत जैसा होकर (ईयसे) चलता है, जाता है, बहता है।

भावार्थ- वायु व्याधि दूर करने का बल लाता और मलोंको दूर करता है। संपूर्ण औषधियों के गुण वायु में हैं, अतः मानो वह देवोंका दूतही है।

ऋग्वेदका पाठ 'त्वं हि विश्वभेषजः' है। अथर्ववेदमें 'विश्वभेषज' है।

(वात) O wind! (आ वाहि) hither blow, (भेषजं) healing balm, (वात) O wind! (वि वाहि) blow away (यत् रपः) every fault, (हि) for thou (विश्वभेषज) who hast all medicine, (ईयसे) comest (दूतः) as envoy (देवानां) of deities.

भेषजं= औषध, दवा। ईयसे= चलता है (ई=जाना)
दूत= सेवक। विश्वभेषज= सबकी दवा।

त्रायन्तामिमं देवास्त्रायन्तां मरुतां गणाः।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ॥४॥

पदानि-- त्रायन्ताम् । इमम् । देवाः । त्रायन्ताम् । मरुताम् । गणाः । त्रायन्ताम् । विश्वा । भूतानि । यथा । अयम् । अरपाः । असत् ॥४॥

अन्वयः--हे देवाः ! इमं त्रायन्ताम् । हे मरुतां गणाः ! त्रायन्ताम् । विश्वा भूतानि त्रायन्ताम् । यथा अयं अरपा असत् ।

अर्थ— हे (देवाः) देवो! (इमं) इस रोगी की (त्रायन्तां) रक्षा करो। हे (मरुतां गणाः) मरुतों के समूहो! (त्रायन्तां) रक्षा करो। (विश्वा) सब (भूतानि) प्राणी (त्रायन्तां) रक्षा करें। (यथा) जिससे (अयं) यह रोगी (अ-रपाः) रोगदोष-रहित (असत्) होवे।

भावार्थ— जलादि सब देवताएं, मरुत, वायुओंके संघ, तथा सब प्राणी इसकी रक्षा करें और इनकी कृपासे यह रोगी नीरोग होवे।

ऋग्वेद में 'त्रायन्तामिह' पाठ है।

May (देवाः) deities (त्रायन्तां) save (अयं) this man; (मरुतां गणाः) all groups of Maruts (त्रायन्तां) protect him. May (विश्वा) all (भूतानि) beings (त्रायन्तां) protect him, (यथा) that (अयं) he (असत्) may be (अ-रपाः) free from disease.

मरुत्= वायुभेद। मरुत् ४९ हैं, ७ के ७ मिलकर ४९ मरुत् हैं। ये गण हैं, अर्थात् समूह से रहनेवाले हैं।

अ-रपाः= निर्दोष, नीरोग।

आ त्वागमं शंतातिभिरथो अरिष्टतातिभिः ।
दक्षं त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते ॥५॥

पदानि– आ। त्वा। अगमम्। शंतातिऽभिः। अथो इति। अरिष्टतातिऽभिः। दक्षम्। ते। उग्रम्। आ। अभारिषम्। परा। यक्ष्मम्। सुवामि। ते ॥५॥

अन्वयः— त्वा शंतातिभिः, अथो अरिष्टतातिभिः, आ अगमम् । ते उग्रं दक्षं आ अभारिषम्, ते यक्ष्मं परा सुवामि ।

अर्थ— (त्वा) तेरे पास (शं-तातिभिः) शांति फैलानेवाले (अथो) तथा (अ-रिष्ट-तातिभिः) अविनाश करनेवाले साधनों के साथ (आ अगमं) आया हूं । (ते) तेरे लिए (उग्रं दक्षं) प्रचण्ड बल (आ अभारिषं) भर देता हूं । (ते) तेरे (यक्ष्मं) रोग को (परा सुवामि) दूर भगा देता हूं ।

भावार्थ— रोगी के पास आरोग्य बढानेवाले और विनाश दूर करनेवाले साधन उपस्थित करने चाहियें । तथा रोगी के अन्दर बल बढाना और रोगबीज उससे दूर करना चाहिये ।

ऋग्वेदका पाठ 'दक्षं ते भद्रमाभार्षं' है ।

भद्र = कल्याण ।

I (आ अगमं) have come nigh (त्वा) to thee (शंतातिभिः) with balms of peace (अथो) and (अरिष्टतातिभिः) protections. I (आ अभारिषं) bring (ते) thee (उग्रं दक्षं) mighty strength, and I (परा सुवामि) drive away (ते) thy (यक्ष्मं) wasting malady.

शं + तातिन् = सुखका फैलाव, शांतिका प्रचार ।

अरिष्टतातिन् = (अ) नहीं है (रिष्ट) नाश जिसमें, ऐसी जो अविनाशी स्थिति, उसका प्रचार करनेवाला ।

उग्र = प्रखर, विशेष । आभारिषं (आ भृ) = सब प्रकारसे भर देना ।

यक्ष्म = दोष, रोगबीज, क्षयरोग ।

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः ।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥६॥

पदानि-- अयम् । मे । हस्तः । भगऽवान् । अयम् । मे । भगवत्ऽतरः । अयम् । मे । विश्वऽभेषजः । अयम् । शिवऽअभिमर्शनः ॥६॥

अन्वयः-- मे अयं हस्तः भगवान् । मे अयं भगवत्तरः । मे अयं विश्वभेषजः । अयं शिव+अभिमर्शनः ।

अर्थ- (मे) मेरा (अयं) यह (हस्तः) हाथ (भगवान्) भाग्यवान् है । (मे अयं) मेरा यह हाथ (भगवत्तरः) अधिक भाग्यशाली है । (मे अयं) मेरा यह हाथ (विश्वभेषजः) सब औषधियों से युक्त है और (अयं) यह मेरा हाथ (शिव-अभि-मर्शनः) शुभ स्पर्श देनेवाला है ।

भावार्थ-- [हाथ से रोगी को उपचार करनेवाला कहता है कि;] हे रोगी ! इस मेरे हाथमें बडी विलक्षण शक्ति है । इसके स्पर्श से आरोग्य प्राप्त हो सकता है और कल्याण प्राप्त हो सकता है । (उपचार करनेवाला ऐसा विश्वास रोगीमें उत्पन्न करे ।)

(अयं) This (मे) my (हस्तः) hand is (भगवान्) full of divine power and yet (अयं मे) this my hand has (भगवत्तरः) more divine power. (अयं मे) This my hand contains (विश्वभेषजः) all-healing balms and (अयं) this my hand has (शिव-अभि-मर्शनः) blissful touch.

भगवान् = भाग्यवान्, शुभसूचक । शिवाभिमर्शनः = शुभ करनेवाला ।
भगवत्तर = अधिक भाग्यशाली । हस्त = हाथ ।
विश्वभेषज = सब रोगोंकी दवा ।

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी । अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभि मृशामसि ॥७॥

पदानि– हस्ताभ्याम् । दशऽशाखाभ्याम् । जिह्वा । वाचः । पुरःऽगवी । अनामयित्नुऽभ्याम् । हस्ताभ्याम् । ताभ्याम् । त्वा । अभि । मृशामसि ॥७॥

अन्वयः– दशशाखाभ्यां हस्ताभ्यां, वाचः पुरोगवी जिह्वा । ताभ्यां अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां त्वा अभि मृशामसि ।

अर्थ– (दशशाखाभ्यां) दस शाखावाले (हस्ताभ्यां) दोनों हाथोंके साथ (वाचः पुरोगवी) वाणीको आगे प्रेरणा करनेवाली मेरी (जिह्वा) जीभ है। (ताभ्यां) उन (अनामयित्नुभ्यां) नीरोग करनेवाले (हस्ताभ्यां) दोनों हाथोंसे (त्वा) तुझे (अभि मृशामसि) हम स्पर्श करते हैं।

भावार्थ- (स्पर्शोपचार करनेवालेको उचित है कि वह) अपने दस अंगुलियोंवाले दोनों हाथों के स्पर्श के साथ जिह्वासे सूचक शब्दों का प्रयोग करें। नीरोगताकी शक्ति के साथ रोगी को स्पर्श करे और आरोग्यपूर्वक शब्द भी सुनावे।

(दशशाखाभ्यां) With our tenfold-branching (हस्ताभ्यां) hands and with (जिह्वा) the tongue (वाचः पुरोगवी) that leads the voice of blessing, (ताभ्यां) with these two (अनामयित्नुभ्यां) healers of diseases (हस्ताभ्यां) hands, we (अभिमृशामसि) touch (त्वा) thee.

ऋग्वेद में 'त्वोप स्पृशामसि' पाठ है।
दशशाखा = दस शाखा।
पुरोगवी = अग्रभागमें जानेकी प्रेरणा देनेवाली।
अनामयित्नु = (अन्+आमय) नीरोगता करनेवाला।
अभिस्पृश् = स्पर्श करना।
ऋग्वेद में इस सूक्त में निम्नलिखित मन्त्र अधिक है—

आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।
आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम्॥

(ऋ० १०।१३७।६)

पदानि-- आपः। इत्। वै। उँ इति। भेषजीः। आपः। अमीवचातनीः। आपः। सर्वस्य। भेषजीः। ताः। ते। कृण्वन्तु। भेषजम्।

अन्वयः-- आपः इत् वै उ भेषजीः। आपः अमीवचातनीः। आपः सर्वस्य भेषजीः। ताः ते भेषजं कृण्वन्तु।

अर्थ— (आपः) जल ही (इत् वा उ) निःसन्देह (भेषजीः) औषधि है। (आपः) जल (अमीवचातनीः) रोग दूर करनेवाली है। (आपः) जल (सर्वस्य) सब रोगोंकी (भेषजीः) औषधि है। (ताः) वह जल (ते) तेरे लिये (भेषजं) औषध (कृण्वन्तु) करें, बनावें।

भावार्थ— जल से सब रोग दूर होते हैं। इस लिये जलसे रोगीयोंके रोग दूर किये जांये।

(आपः) The waters have their (इत् वै उ भेषजीः) healing power. (आपः) The waters (अमीव-चातनीः) drive diseases

away. (आपः) The waters (भेषजीः) have a balm (सर्वस्य) for all. (ताः) Let them (कृण्वन्तु) make (भेषजं) medicine (ते) for thee.

अमीवचातनीः= अमीव (आम+वान्) आमसे उत्पन्न होनेवाले रोग।
चातनीः= दूर करनेके सामर्थ्य से युक्त।
भेषजीः=औषध, दवा, औषधि।
आप्=जल।
विश्वभेषजी=सर्वस्य भेषजी, विश्वस्य भेषजी।

इस सूक्तके सुभाषित।

१. अवहितं उन्नयथ= गिरे हुए पतितको ऊपर उठाओ। पतितको उच्च बनाओ।
२. आगश्चकुषं जीवयथ= पाप करनेवालेको भी (उसकी पापबुद्धि दूर करके) दीर्घजीवी बनाओ।
३. वातः दक्षं आवातु, यद्रपः विवातु= वायु बल देवे और दोष दूर करे।
४. वातः भेषजं आवाहि, यद्रपः विवाहि= वायु औषधि गुणधर्म ले आवे और दोष दूर करे।
५. (वातः) विश्वभेषजः= वायु सब रोगों की दवा है।
६. (वातः) देवानां दूतः=वायु देवोंका संदेश देनेवाला है।
७. दक्षं ते उग्रं आभारिषं, तं यक्ष्मं परा सुवामि= बल तेरे अंदर भर देता हूं और रोग दूर करता हूं। (यही रोगचिकित्साका विधि है।)
८. मे हस्तः विश्वभेषजः= यह मेरा हाथ रोगनाश करनेकी शक्तिसे युक्त है। (हस्तस्पर्शसे चिकित्सा करनेके समय रोगीके मनमें यह विश्वास उत्पन्न करना आवश्यक है।)

९. अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां त्वाभिस्पृशामसि= नीरोगता करनेवाले मेरे दोनों हाथों से तुझ (रोगी) को मैं स्पर्श करता हूं, (जिससे तू नीरोग होगा।

१०. आपः भेषजीः= जल औषधिधर्मसे युक्त है।

११. आपः अमीवचातनीः=जल रोग दूर करनेवाला है ।

१२. आपः सर्वस्य भेषजीः= जल सब रोगोंकी दवा है।

(ऋ० १०।१८६।१)

(ऋषिः-उलो वातायनः। देवता-वायुः। छन्दः-गायत्री।)

वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभुवो हृदे ।
प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥१॥

पदानि– वातः। आ। वातु। भेषजं। शम्ऽभु। मयःऽभु। नः। हृदे। प्र। नः। आयूंषि। तारिषत् ॥१॥

अन्वयः-- वातः नः हृदे शंभु मयोभु भेषजं आ वातु। नः आयूंषि प्र तारिषत्।

अर्थ—(वातः) वायु (नः हृदे) हमारे हृदयोंके लिये (शं-भु) शांति देनेवाला और (मयो-भु) सुख देनेवाला होकर हमारे पास (आ वातु) बहता रहे। और (नः आयूंषि) हमारे आयुष्य (प्र तारिषत्) दीर्घ करे।

भावार्थ– शुद्ध वायु हृदयका आनंद बढानेवाला, शांति देनेवाला, आरोग्य देनेवाला और दीर्घायु देनेवाला है। वह हमारे आयुष्य बढावे।

Filling (नः) our (हृदे) heart (शंभु) with health and (मयोभु) with joy, may (वात) wind (आ वातु) breathe his (भेषजं) balm (नः) on us. (प्रतारिषत्) May he prolong (नः) our (आयूंषि) days of life.

मयः = सुख, आनंद, समाधान, आरोग्य । शं = शांति, सुख । प्रतारिषत् (प्रतृ) = बढाना, फैलाना । हृद् = हृदय । आयूंषि = आयुष्य ।

उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा ।
स नो जीवातवे कृधि ॥२॥

पदानि-- उत । वात । पिता । असि । नः । उत । भ्राता । उत । नः । सखा । सः । नः । जीवातवे । कृधि ॥२॥

अन्वयः-- हे वात ! उत नः पिता असि । नः उत भ्राता, उत सखा । सः (त्वं) नः जीवातवे कृधि ।

अर्थ- हे (वात) वायो ! (उत) निःसन्देह तू (नः) हमारा (पिता) पालक, रक्षक, पिता (असि) है । (नः) हमारा और (भ्राता) भाई, भरणपोषणकर्ता है और (उत सखा) मित्र भी है । (सः) वह तू (नः) हमारे (जीवातवे) दीर्घ जीवन के लिए उपाय (कृधि) कर ।

भावार्थ- वायु ही सच्चा पिता, भाई और मित्र है । वही दीर्घायु देता है ।

O (वात) wind ! Thou (असि) art (नः) our (पिता) father, (उत) yea, thou art a (भ्राता) brother and a (सखा) friend. So (कृधि) make (नः) our (जीवातवे) life long.

जीवातु = जीवन, आयु, दीर्घायु ।

यददो वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः ।
ततो नो देहि जीवसे ॥३॥

पदानि- यत् । अदः । वात । ते । गृहे । अमृतस्य । निऽधिः । हितः । ततः । नः । देहि । जीवसे ॥३॥

अन्वयः– हे वात ! ते गृहे यत् अदः अमृतस्य निधिः हितः। ततः नः जीवसे धेहि।

अर्थ– हे (वात) वायो! (ते) तेरे (गृहे) घरमें (यत्) जो (अदः) वह अपूर्व (अमृतस्य) अमरपन का (निधिः) खजाना (हितः) रखा है, (ततः) उस खजानेमें से (नः) हमारे (जीवसे) दीर्घ जीवन के लिये (थोडासा भाग) (देहि) दे।

भावार्थ– वायु के पास अमृत है, उसकी प्राप्ति होनेसे दीर्घायु होती है। (शुद्ध वायुसेवनसे दीर्घायु होती है।

(अमृतस्य निधिः) The store of Amrit-immortality (हितः) laid away (अदः) yonder, O (वात) Wind! (ते गृहे) in thine home, (देहि) give (नः) us (ततः) there of (जीवसे) that we may live long.

अमृत = अमरपन। निधिः = खजाना। जीवसे = दीर्घ जीवन के लिये।

क्रिमिनाशन।

(अथर्व० २।३२।१)

(ऋषिः– कण्वः। देवता – आदित्यः। छन्दः– अनुष्टुप्, १ गायत्री, ६ उष्णिक्)

उ॒द्यन्ना॑दि॒त्यः क्रिमी॑न्हन्तु नि॒म्रोच॑न्हन्तु र॒श्मिभिः॑। ये अ॒न्तः क्रिम॑यो गवि॑ ॥१॥

पदानि– उ॒त्ऽयन्। आ॒दि॒त्यः। क्रिमी॑न्। ह॒न्तु॒। नि॒ऽम्रोच॑न्। ह॒न्तु॒। र॒श्मिभिः॑। ये। अ॒न्तः। क्रिम॑यः। गवि॑ ॥१॥

अन्वयः– उद्यन् आदित्यः क्रिमीन् हन्तु । निम्रोचन् रश्मिभिः हन्तु । ये क्रमयः गवि अन्तः ॥१॥

अर्थ– (उद्यन्) उगता हुआ (आदित्यः) सूर्य (क्रिमीन्) क्रिमियों का (हन्तु) नाश करे। (निम्रोचन्) अस्तको जाता हुआ सूर्य अपने (रश्मिभिः) किरणोंद्वारा क्रिमियों का (हन्तु) नाश करे। (ये) जो (क्रिमयः) कृमि (गवि अन्तः) भूमिपर रहते हैं।

भावार्थ– भूमिपर सूक्ष्म कृमि रहते हैं, इनमें से कईयों का सम्बन्ध रोगोंसे रहता है। इन सूक्ष्म कृमियों का नाश सूर्य के किरणों से होता है।

Let (उद्यन्) the rising (सूर्यः) sun (हन्तु) destroy (क्रिमीन्) germs, and the (निम्रोचन्) setting sun (हन्तु) may destroy them (ये) which (क्रिमयः) germs are (गवि अन्तः) in the earth.

क्रिमिः = कृमि, कीडा, रोगजन्तु, जन्तु।
निम्रोचन् = अस्त होनेवाला।
रश्मिः = किरण।
गवि = गो = किरण, पृथ्वीपर।

विश्वरूपं चतुरक्षं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम्।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥२॥

पदानि– विश्वऽरूपम् । चतुःऽअक्षम् । क्रिमिम् । सारङ्गम् । अर्जुनम् । शृणामि । अस्य । पृष्टीः । अपि । वृश्चामि । यत् । शिरः ॥२॥

अन्वयः- विश्वरूपं चतुरक्षं सारङ्गं अर्जुनं क्रिमिं (हन्तु)। (अहं) अस्य पृष्टीः शृणामि। यत् शिरः अपि वृश्चामि।

अर्थ— (विश्व-रूपं) अनेक रूपोंवाले (चतुरक्षं) चार आंखों-वाले, (सारंगं) अनेक रंगोंवाले (अर्जुनं) श्वेत आदि प्रकारके (क्रिमिं) कृमि का नाश होवे। (अस्य) इस की (पृष्टीः) हड्डी को (शृणामि) तोडता हूं, तथा इसका (यत्) जो (शिरः) सिर है, उसको (वृश्चामि) कुचलता हूं।

भावार्थ- ये कृमि अनेक रंगों और विविध रूपोंवाले होते हैं, कई श्वेत भी होते हैं और कई बहुरंगे भी होते हैं। इनका नाश करनेके लिये इनकी हड्डी और शिर तोडना चाहिये।

जिस कारण इस मन्त्र में कृमियों की हड्डी तोडने और शिर फोडने का विधान है, उस कारण ये कृमि सूक्ष्म नहीं हो सकते। ये बडे होंगे और इनकी पीठ में हड्डी होंगी और शिर भी कुचलने योग्य बडा होगा। ये सांप जैसे छोटे मोटे होंगे। प्रथम मंत्र में वर्णित कृमि सूर्यकिरणों से नष्ट होनेवाले हैं, अतः वे अति सूक्ष्म होंगे। परन्तु इस मंत्र में वर्णित कृमि शिर कुचलने से और पीठ की रीढ तोडने से मरनेवाले हैं, इसलिये ये रीगनेवाले सांप जैसे होंगे। पाठक इन मंत्रों के पदों का इस तरह विचार करे।

The germ (विश्वरूपं) having every shape, (चतुरक्षं) four-eyed, (सारङ्गं) the variegated, (अर्जुनं) and the white. (शृणामि) I break and (वृश्चामि) crush (अस्य पृष्टीः) its ribs (अपि) and (यत् शिरः) its head as well.

विश्वरूप= अनेकरूपी, अनेक रूपोंवाला। शृ= तोडना। पृष्टीः= पीठ की हड्डी, पीठ। वृश्च् (व्रश्च्)- तोडना, कुचलना। सारङ्ग = रंगाबेरंगा। अर्जुन = श्वेत, सफेद।

अत्रिवद्वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत्।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन्॥३॥

पदानि– अत्रिऽवत्। वः। क्रिमयः। हन्मि। कण्वऽवत्। जमदग्निऽवत्। अगस्त्यस्य। ब्रह्मणा। सम्। पिनष्मि। अहम्। क्रिमीन्॥३॥

अन्वयः– हे क्रिमयः! वः अत्रिवत् कण्ववत् जमदग्निवत् हन्मि। अगस्त्यस्य ब्रह्मणा अहं क्रिमीन् सं पिनष्मि।

अर्थ– हे (क्रिमयः) किडों! (अत्रिवत् कण्ववत् जमदग्निवत्) अत्रि कण्व जमदग्निके समान मैं (वः हन्मि) तुमको मारता हूं। (अगस्त्यस्य) अगस्ति की (ब्रह्मणा) विद्यासे (अहं) मैं (क्रिमीन्) कृमियों को (सं पिनष्मि) पीस डालता हूं।

भावार्थ– अत्रि, कण्व, जमदग्नि और अगस्ति नामक कोई विद्या है, जिस विद्याके अनुसार प्रयोग करने से कृमियोंका नाश होता है।

अत्रि, कण्व, जमदग्नि और अगस्ति ऋषिके जो विषनाशक, कृमिनाशक तथा रोगनाशक सूक्त तथा मन्त्र हैं, उनका विशेष मनन करने से इस कृमिनाशक विद्याका पता लग सकता है।

(अत्रिवत्) Like Atri (हन्मि) I destroy you, O germs, (कण्ववत्) like Kanva's & (जमदग्निवत्) like Jamadagni's way. I (संपिनष्मि) bruise the (क्रिमीन्) germs to pieces (अगस्त्यस्य ब्रह्मणा) with the spell of Agastya.

अत्रिवत् = अत्रिके समान। कण्ववत् = कण्वके समान। जमदग्निवत् = जमदग्निके समान। ब्रह्म = ज्ञान, मन्त्र। पिनष्मि (पिंष्) = पीसना।

हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः ।
हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा॥४॥

पदानि- हतः । राजा । क्रिमीणाम् । उत । एषाम् । स्थपतिः । हतः । हतः । हतऽमाता । क्रिमिः । हतऽभ्राता । हतऽस्वसा ॥४॥

अन्वयः-- क्रिमीणां राजा हतः । उत एषां स्थपतिः हतः । हतमाता, हतभ्राता, हतस्वसा क्रिमिः हतः ।

अर्थ- (क्रिमीणां) कृमियोंका (राजा) मुखिया (हतः) मारा गया है । (उत) और (एषां) इनका (स्थपतिः) स्थानपति भी (हतः) मारा गया है । (हत-माता) जिसकी माता मारी गई, (हत-भ्राता) जिसका भाई मारा गया, (हत-स्वसा) जिसकी बहिन मारी गई, ऐसा (क्रिमिः) कृमि (हतः) मारा गया है ।

भावार्थ- कृमियों के सब कुल और परिवार का नाश होना चाहिये ।

चूंटियों में एक रानी होती है, जबतक वह नहीं मारी जाती, तबतक चूंटियां कष्ट देती रहती हैं । इसी तरह कृमियों की कई जातियोंमें पारिवारिक या सांघिक संघटना होगी, जिसका उल्लेख ऊपरके मन्त्र में आया है। यह कृमिराजा, कृमिमाता, कृमिभ्राता, आदिके विषयमें कृमियों की जातियों का याथातथ्य ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। केवल चूंटियों की एक राणी होती है, इतना हम इस समय जानते हैं । शेष खोज का विषय है ।

(हतः) Slain is the (राजा) sovereign of (क्रिमीणां) these germs. (उत) Yea, (एषां) their (स्थपतिः) controlling lord is (हतः) slain. (हतः) Slain is the (क्रिमिः) germ,

(हतमाता) having its mother slain, (हतभ्राता) its brother slain, (हतस्वसा) its sister slain.

स्थपतिः (स्थानपतिः) = मुखिया, प्रमुख अधिपति।

हुतासौ अस्य वेशसौ हुतासः परिवेशसः।
अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हुताः॥५

पदानि-- हुतासः। अस्य। वेशसः। हुतासः। परिऽवेशसः। अथो इति। ये। क्षुल्लकाः इव। सर्वे। ते। क्रिमयः। हुताः॥५॥

अन्वयः-- अस्य वेशसः हतासः। परिवेशसः हतासः। अथो ये क्षुल्लकाः इव, ते सर्वे क्रिमयः हताः।

अर्थ- (अस्य) इस कृमिके (वेशसः) परिचारक (हतासः) मारे गये। (परिवेशसः) सेवक भी (हतासः) मारे गये हैं। (अथो) और (ये क्षुल्लकाः इव) जो छोटे जैसे थे, (ते सर्वे) वे सब (क्रिमयः) कृमी (हताः) मारे गये हैं।

इस मन्त्र का भाव भी पूर्व मन्त्र के आशय के समान ही समझना चाहिये। यहां 'वेशसः, परिवेशसः' ये शब्द नौकर, परिचारकों के वाचक हैं, परन्तु कृमियों के संबंध में इनका अर्थ केवल मुख्य कृमियों के साथ रहनेवाले, इतनाही समझना योग्य है।

(हतासः) Slain are (अस्य) his (वेशसः) servants, (हतासः) slain are (परिवेशसः) his followers. (अथो) Yea, (ये क्षुल्लकाः) those that are tiniest (क्रिमयः) germs, (ते सर्वे) are all (हताः) put to death.

वेशस् = नौकर, साथी। परिवेशस् = परिचारक। क्षुल्लक = क्षुद्र।

प्र ते॑ शृणामि॒ शृङ्गे॒ याभ्यां॑ वितुदा॒यसि॑ ।
भि॒नद्मि॑ ते कुषुम्भं॒ यस्ते॑ विष॒धानः॑ ॥६॥

पदानि—प्र। ते॒। शृणामि॒। शृङ्गे॒ इति। याभ्याम्। वि॒ऽतुदा॒यसि॑। भि॒नद्मि॑। ते॒। कुषुम्भम्। यः। ते॒। विष॒ऽधानः॑॥६॥

अन्वयः— ते शृङ्गे प्र शृणामि, याभ्यां वितुदायसि। ते कुषुम्भं भिनद्मि, यः ते विषधानः।

अर्थ— (ते) तेरे (शृंगे) दोनों सींग (प्र शृणामि) काटता हूं, (याभ्यां) जिनसे तू (वि-तुदायसि) काटता है। (ते) तेरे (कुषुंभं) विषकी थैली को (भिनद्मि) तोडता हूं, (यः) जो (ते) तेरा (विषधानः) विषका थैला है।

भावार्थ—इस कृमिके सींग विषकी थैलीके साथ लगे होते हैं। वह सींगोंसे काटता है और छेदों द्वारा विष गिराता है। ऐसे कृमीके सींग भी तोडे जाने चाहिये और विषस्थान भी कुचलना चाहिये।

सांपमें विषकी थैली दांतों के साथ लगी होती है। सांप पकडनेवाले दांत गिराते हैं, उसके साथ विष की थैली भी फट जाती है। परंतु ज्ञानी कहते हैं कि सांप के मुख में दांत भी फिर आते हैं और विषकी थैली भी पुनः बनती है। इस मन्त्र में सींगोंका उल्लेख है, यह सींगसे विष गिरानेवाला कृमि कौनसा है, यह ढूंढना चाहिये। मच्छर के सींग होते हैं, या कुछ और साधन होते हैं। अन्य भी कोई कृमि होंगे। ज्ञानी इसकी खोज करें।

(प्र शृणामि) I break into pieces (ते शृंगे) both thy horns, (याभ्यां) wherewith thou (वितुदायसि) pushest

here and there. (भिनद्मि) I cleave and rend the bag (यः) which (विषधानः) holds the venom, which is stored (ते) in thee.

शृंगं = सींग। वितुद् = तोडना। भिनद्मि (भिद्)=भेदन करना, तोडना। कुषुम्भ = विषस्थान। विषधान = विषकी थैली।

राष्ट्रीय सभा।

(अथर्व० ७।१२ (१३)।१)

(ऋषिः–शौनकः। देवता–सभा; १–२ सभा, पितरः; ३ इन्द्रः; ४ मनः। छन्दः–अनुष्टुप्, १ भुरिक् त्रिष्टुप्)

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने। येना संगच्छा उप मा स शिक्षाच्चारु वदानि पितरः संगतेषु ॥१॥

पदानि–सभा। च। मा। सम्ऽइतिः। च। अवताम्। प्रजाऽपतेः। दुहितरौ। संविदाने इति। सम्ऽविदाने। येन। सम्ऽगच्छै। उप। मा। सः। शिक्षात्। चारु। वदानि। पितरः। सम्ऽगतेषु ॥१॥

अन्वयः–प्रजापतेः दुहितरौ संविदाने सभा च समितिः च मा अवताम्। येन संगच्छै, सः मा उपशिक्षात्। हे पितरः! संगतेषु चारु वदानि ॥१॥

अर्थ— [राजा कहता है] (प्रजापतेः दुहितरौ) प्रजापति की दोनों दुहितायें, (संविदाने) एकमत से चलनेवाली (सभा च समितिः च) सभा और समिति, ये दोनों सभाएं (मा अवतां) मेरी रक्षा करें। (येन संगच्छै) जिससे मैं मिलूं, (सः) वह (मा उपशिक्षात्) मुझे शिक्षा देवे, सहाय्य करे। हे (पितरः) पितरो! (संगतेषु) सभाओं में (चारु वदानि) मैं उत्तम सुंदर बोलूं।

भावार्थ-- प्रजापति प्रजा का पालन करनेवाला राजा है। इस राजा के राज्य में उसके द्वारा पुत्रीवत् पालन होने योग्य दो सभाएं होती हैं, एक है **ग्रामसभा** और दूसरी है **राष्ट्रीय समिति**। ये दोनों सभाएं परस्पर संमति से ऐकमत्य करके राज्य का सब कार्य करें। इनका आपस में विरोध न हो। इन के द्वारा ही राजा की रक्षा हो सकती है। राजा इनकी रक्षा चाहता रहे। राजा जिस सदस्य से बातचीत करे, वह सभासद निष्पक्ष होकर राजा को सब तरह से राज्यव्यवहारसंबंधी ठीक ठीक शिक्षा देवे। सभाओं के सभासद राजा के लिये पितृस्थानीय हैं। इनके सामने राजा प्रतिज्ञा करे कि, मैं सभाओं में सुचारु भाषण करूंगा।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१. **सभा**= ग्रामसभा, नगरसभा, ग्रामपंचायत।

२. **समिति**= प्रान्तीय सभा, राष्ट्रीय महासभा, अनेक ग्रामों की मिलकर सभा।

३. **अव्**= रक्षा करना।

४. **प्रजापतिः**= प्रजाका (पति) पालन करनेवाला, राजा।

५. **दुहितृ**= दुहिता, पुत्री, लडकी, (दूरे+हिता) दूर रहने से हितकारिणी जो होती है। दूध दुहनेवाली।

६. **संविदाना**= सम्यक् ज्ञान देनेवाली, एकता करनेवाली, ऐकमत्यसे कार्य करनेवाली।

७. संगच्छ् (संगम्)= मिलना।
८. उपशिक्ष्=सीखना, सिखाना, पढाना।
९. चारु= प्रेय, प्रिय, आह्लाददायक, सुंदर।
१०. पितरः= (पातारः) रक्षक, संरक्षक, पितर।
११. संगतं= सभा।

(संविदाने) In concord, may (प्रजापतेः) prajapati's (दुहितरौ) two daughters, (सभा च) Gathering and (समितिः च) Assembly, both (अवतां) protect (मा) me. (येन) With whom (संगच्छै) I shall come together, (सः) may he (उपशिक्षात्) teach me. O (पितरः) Fathers! (वदानि) I speak (चारु) agreeably (संगतेषु) in these meetings.

विद्म ते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि।
ये ते के च सभासदस्ते मे सन्तु सवाचसः॥२॥

पदानि–विद्म। ते। सभे। नाम। नरिष्टा। नाम। वै। असि। ये। ते। के। च। सभाऽसदः। ते। मे। सन्तु। सऽवाचसः॥२॥

अन्वयः–हे सभे! ते नाम विद्म। नरिष्टा नाम वै असि। ये के च ते सभासदः ते मे सवाचसः सन्तु॥२॥

अर्थ–हे (सभे) सभा! (ते नाम) तेरा नाम (विद्म) हमें विदित है।(नरिष्टा) अहिंसक यही तेरा (नाम) नाम (वै असि) निश्चयसे है। (ये के च ते) जो कोई तेरे (सभासदः) सभासद हैं,

(ते) वे (मे) मेरे साथ (सवाचसः सन्तु) समान भाव से बोलनेवाले हों।

भावार्थ—(राजा कहता है) इन राजसभाओं का नाम 'न+रिष्टा' है, अर्थात् ये सभाएं राजा और प्रजाओं को नाश से बचानेवाली हैं। सभा स्थापन होने से राजा और प्रजा दोनों की रक्षा हो जाती है। जो सभासद होते हैं, वे राजा के साथ समान अधिकार से वार्तालाप करनेवाले हों, डरकर मनकी सच्ची बात न छिपावें।

मन्त्रस्थ पदोंके अर्थ।

१. विद् = जानना।
२. नरिष्टा = (न) नहीं (रिष्ट) नाश करनेवाली; जो नाश नहीं करती।
३. सभासद् = सभा के सदस्य।
४. सवाचस् = समान अधिकार से भाषण करनेवाला।

(सभे) O Conference ! (विद्म) we know (ते नाम) thy name. Thy (नाम)name (असि) is (नरिष्टा) non-injurious. (ये के च ते) Whoever are the members of the assembly, may (ते) these (सन्तु) be and (सवाचसः) speaking (मे) with me with equality.

एषामहं समासीनानां वर्चो विज्ञानमा ददे।
अस्याः सर्वस्याः संसदो मामिन्द्र भगिनं कृणु॥३॥

पदानि— एषाम्। अहम्। सम्ऽआसीनानाम्। वर्चः। विऽज्ञानम्। आ। ददे। अस्याः। सर्वस्याः। सम्ऽसदः। माम्। इन्द्र। भगिनम्। कृणु॥३॥

अन्वयः–अहं एषां समासीनानां वर्चः विज्ञानं आ ददे । हे इन्द्र ! अस्याः सर्वस्याः संसदः मां भगिनं कृणु ॥३॥

अर्थ- (अहं) मैं (एषां समासीनानां) इन सब बैठे हुए सभासदों से (वर्चः) तेज और (विज्ञानं) विशेष ज्ञान (आददे) स्वीकारता हूं। हे इन्द्र ! (अस्याः) इस (सर्वस्याः) सब (संसदः) सभाका (मां) मुझे (भगिनं) भागी (कृणु) कर ॥३॥

भावार्थ- मैं (राजा) इन सब सभासदों से राज्यव्यवहार का ज्ञान और बल प्राप्त करता हूं। हे प्रभो ! इस संपूर्ण सभा का मुझे सहभागी बना।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ ।

१ सं–आसीन (समासीन)= मिलकर बैठे हुए सभासद ।
२ वर्चस् = तेज, बल, सामर्थ्य ।
३ विज्ञानं = विशेष ज्ञान
४ संसद् = सभा, परिषद ।
५ भगिन्=भागिन्–सहभागी, सभासदत्वके अधिकारसे युक्त ।

(अहं आददे) I take (वर्चः) the splendour and (विज्ञानं) knowledge (एषां समासीनानां) from these men seated here. O (इन्द्र) Lord! (कृणु) Make (मां) me (भगिनं) partner (अस्याः सर्वस्याः) of this whole (संसदः) gathering, or assembly.

यद्वो मनः परागतं यद् बद्धमिह वेह वा ।
तद् व आ वर्तयामसि मयि वो रमतां मनः॥४॥

पदानि–यत् । वः । मनः । परा॑ऽगतम् । यत् । बद्धम् । इह । वा । इह । वा । तत् । वः । आ । वर्तयामसि । मयि । वः । रमताम् । मनः ॥४॥

अन्वयः–वः यत् मनः परागतं, यत् वा इह वा इह वा बद्धं, वः तत् आवर्तयामसि, वः मनः मयि रमताम् ॥४॥

अर्थ- (वः) आपका (यत् मनः) जो मन (परागतं) दूर गया है, अथवा (इह वा इह वा) यहां किंवा वहां (बद्धं) बंधा रहा है, (वः) आपका (तत्) वह मन मैं (आवर्तयामसि) लौटा लाता हूं, वापस लाता हूं। वह (वः मनः) आपका मन (मयि) मुझपर (रमतां) रममाण होवे ॥४॥

भावार्थ- राष्ट्र-सभा के सभासदों का मन दूर दूरके विचारोंमें लगा हो, अथवा किसी पास की बातमें लगा रहा हो, वह सभा के समय सभा के विषयमें हि लगा रहे, राजा के कर्मपरहि वह स्थिर होवे।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१ **परागतं** = दूर गया, दूर भागा हुआ।
२ **बद्धं** = बंधा हुआ।
३ **आवृत्** = वापस लाना।
४ **रम्** = रममाण होना, आनंदित होना।

(यत्) Whether (वः मनः) your mind (परागतं) is gone away or (बद्धं) is bound either (इह वा) here or (इह वा) here, we (आवर्तयामसि) turn (तत्) that mind (वः) of yours, hither again. Let (वः) your (मनः) mind (रमतां) be delighted (मयि) in me.

इस सूक्त के सुभाषित ।

१ **सभा च मा समितिश्चावताम्** = ग्रामसभा और राष्ट्रसमिति राजा की सुरक्षा करें, (क्योंकि राजाको रक्षा करना अथवा न करना इनका हीकार्य है ।)

२ **प्रजापतेर्दुहितरौ** (सभा च समितिश्च) = ग्रामसभा और राष्ट्रीय सभा ये दोनों राजाकी दुहिताएं हैं, पुत्रीवत् पालन करने योग्य हैं । (क्योंकि राष्ट्र की सुरक्षा इनके द्वारा होती है ।)

३ **येना संगच्छा उप मा स शिक्षात्** = जिस सभासदसे मिले वह सभासद राजाको योग्य शिक्षा देवे । (सभाओं का सदस्य न डरता हुआ राजाको योग्य संमति देवे ।)

४ **चारु वदानि संगतेषु** = सभाओं में उत्तम और शुभ भाषण करें ।

५ **सभे ! नरिष्टा नाम वा असि** = सभा का नाम नरिष्टा है । (क्योंकि सभा ही राजा और प्रजा का हित करती है ।)

६ **ये सभासदस्ते मे सन्तु सवाचसः** = जो सभासद हैं, वे समान भावसे बोले, (वे न डरें, न असत्य बोलें, जो योग्य और उचित है वही बोलें ।)

७ **एषां समासीनानां वर्चो विज्ञानमा ददे** = इन सभासदोंसे ज्ञान और तेज मैं प्राप्त करता हूं (राजाको सभाके सदस्योंसे हि राज्यव्यवहार का सत्य ज्ञान मिलता है ।)

८ **अस्याः संसदः मां भगिनं कृणु** = इस सभा का मुझे भागी कर (अर्थात् ऐसे सभा का मैं सदस्य होऊं, सभामें मुझे प्रवेश मिले ।)

आत्मविद्या।

[अथर्व० ४।२।१ (ऋ० १०।१२१)]

(ऋषिः—वेनः । देवता—आत्मा । छन्दः—त्रिष्टुप, ६ पुर उष्णिक्, ७ उपरिष्टाज्ज्योतिः)

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः । योऽ३स्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥

पदानि—यः । आत्मऽदाः । वलऽदाः । यस्य । विश्वे । उपऽआसते । प्रऽशिषम् । यस्य । देवाः । यः । अस्य । ईशे । द्विऽपदः । यः । चतुःऽपदः । कस्मै । देवाय । हविषा विधेम । १ ।

अन्वयः—कस्मै देवाय हविषा विधेम? यः आत्मदाः, बलदाः, विश्वे देवाः यस्य प्रशिषं उपासते । यः अस्य द्विपदः चतुष्पदः ईशे ।

अर्थ— (कस्मै देवाय) किस देवताके लिये हम (हविषा) हवि से पूजा (विधेम) करें? (यः) जो देव (आत्म-दाः) आत्माका दान करनेवाला है, जो (बल-दाः) बलका दान करनेवाला है, तथा (विश्वे) सब (देवाः) देव (यस्य प्रशिषं) जिसकी आज्ञा (उपासते) मानते हैं। (अस्य द्विपदः चतुष्पदः) इस द्विपाद और चतुष्पादोंका (यः ईशे) जो स्वामी है।

भावार्थ— जो सबको आत्मा देता है और बल देता है, जिसकी आज्ञा सब सूर्यादि देवतागण पालन करते हैं और जो द्विपादों और चतुष्पादोंका एक मात्र स्वामी है, उसको उपासना हम सब करें ।

मन्त्रस्थ पदों का अर्थ।

१. **आत्मदाः** = आत्मा का दाता, जीवन देनेवाला ।
२. **बलदाः** = बल देनेवाला ।
३. **प्रशिष्** = आज्ञा, संदेश ।

ऋग्वेद का पाठ– **"य ईशे अस्य द्विपदः०"** (ऋ० १०।१२१।३-२)
य आत्मदा० (ऋ. १।१२१।२।१) वा. य. २५।१३,११

To (कस्मै देवाय) what God (विधेम) may we make worship (हविषा) with oblation? He (यः आत्मदाः) who is giver of soul, who is (बलदाः) giver of strength and vigour, (यस्य प्रशिषं) whose commandment (विश्वे देवाः) all deities (उपासते) wait upon, (यः) who is (ईशे) Lord of (अस्य) this (द्विपदः) bipeds & (चतुष्पदः) of quadrupeds.

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैको राजा जगतो बभूव । यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

पदानि– यः । प्राणतः । निऽमिषतः । महिऽत्वा । एकः । राजा । जगतः । बभूव । यस्य । छाया । अमृतम् । यस्य । मृत्युः । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥२॥

अन्वयः-- कस्मै देवाय हविषा विधेम ? यः प्राणतः निमिषतः जगतः महित्वा एकः राजा बभूव । यस्य छाया अमृतं, यस्य [अ-छाया] मृत्युः ।

अर्थ- किस देवता के लिये हम हविसमर्पणसे पूजा करें? (यः) जो (प्राणतः) श्वास लेनेवाले और (निमिषतः) आंखोंकी पलकें मूंदनेवाले (जगतः) जगत् का (महित्वा) अपनी महिमासे (एकः राजा) एक मात्र राजा हो चुका है, (यस्य छाया) जिसकी छाया ही (अमृतं) अमरपन है और (यस्य [अच्छाया]) जिसका आश्रय न करना ही (मृत्युः) मरण है ।

भावार्थ- इस जगत् में श्वासोच्छ्वास करनेवाले और आंखे खोलनेवाले और मूंदनेवाले जो जंगम प्राणी हैं, उन सबका जो एकमात्र प्रभु अपनी शक्तिसे हुआ है, जिसकी शांत छाया में रहना ही अमरत्व प्राप्त करना है और जिसकी छायासे दूर होना ही मृत्यु प्राप्त करना है, उस एकमात्र प्रभु की हि उपासना करना हम सबको उचित है ॥२॥

मंत्रस्थ पदोंका अर्थ ।

१ प्राणन् = श्वासोच्छ्वास करनेवाला । २ निमिषत् = आंखें खोलने मूंदनेवाला । ३ महित्वा = महिमासे, महत्त्वसे । ४ छाया = छांव, आश्रय, आधार । ५ अमृतं = अमरत्व, अविनाश, अमर होना ।

(कस्मै देवाय हविषा विधेम ?) To what God may we make worship by oblation ? (यः) Who (महित्वा) by his greatness (बभूव) hath become (एकः राजा) sole Ruler (प्राणतः) of breathing and (निमिषतः) winking (जगतः) moving creation, (यस्य छाया) whose cool shade

protection is (अमृतं) immortality, and (यस्य) whose non-protection is (मृत्युः) death.

पाठभेद।

'यः प्राणतो निमिषतश्च राजा पतिर्विश्वस्य जगतो बभूव।'

(मैत्रायणी सं०)

'यः प्राणतो निमिषतो विधर्ता पतिर्विश्वस्य जगतो बभूव'

(पिप्पलाद अथर्व सं०)

यं क्रन्दसी अवतश्चस्कभाने भियसाने रोदसी अह्वयेथाम्। यस्यासौ पन्था रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

पदानि— यम्। क्रन्दसी इति। अवतः। चस्कभाने इति। भियसाने इति। रोदसी इति। अह्वयेथाम्। यस्य। असौ। पन्थाः। रजसः। विमानः। कस्मै। देवाय। हविषा। विधेम ॥३॥

अन्वयः— कस्मै देवाय हविषा विधेम? चस्कभाने क्रन्दसी यं अवतः, भियसाने रोदसी यं अह्वयेथाम्, यस्य असौ रजसः पन्थाः विमानः।

अर्थ—(कस्मै देवाय हविषा विधेम) किस देवता के लिये हम हविसे पूजा करें? (चस्कभाने) स्थिर किये गये (क्रन्दसी) द्युलोक और भूलोक (यं अवतः) जिसका आश्रय लिये खडे हैं,

(भियसाने) भयसे डरनेवाले (रोदसी) द्युलोक और भूलोक (यं अह्वयेथां) जिसको पुकारते हैं, (यस्य) जिस का (असौ रजसः पन्थाः) यह रजोमार्ग (विमानः) विशेष प्रकार से परिमाणित अथवा संमानित है।

भावार्थ— जिससे सुरक्षा प्राप्त कर ये आकाश और भूमि अपने अपने स्थान में सुस्थिर हुए हैं, भूमि और आकाश भय के समय जिसका आश्रय लेने के लिये जिसकी सहायता चाहते हैं और जिसके पास पहुंचने का यह रजोमार्ग निश्चित हुआ है, उस देवता की पूजा सबको करने योग्य है।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१. क्रन्दसी=आक्रोश करनेवाले, गर्जना करनेवाले ।
२. अव्= रक्षा करना ।
३. चस्कभाने= स्थिर हुए, सुदृढ वने हुए।
४. भियसाने= डरनेवाले, भयभीत ।
५. रोदसी= रोनेवाले, भयभीत, द्युलोक और भूलोक।
६. ह्वे= पुकारना।
७. रजस्= धूली, रजोगुण, प्रकाशवाला, मध्यलोक ।
८. विमानः= विशेष मानने योग्य, आकाशस्थानीय विमान के समान तारण करनेवाला, प्रमाणसे नापा हुआ।

(कस्मै देवाय हविषा विधेम) To what God may we make worship with oblation? (यं) To whom (चस्कभाने क्रन्दसी) both the fixed spheres (अवतः) look for protection; (यं) whom both (भियसानें) the territied (रोदसी) firmaments (अह्वयेथां) invoke; and (यस्य) whose is (असौ पन्थाः) this path, that (विमानः) measures out (रजसः) the mid region.

पाठभेद।

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने
(ऋ० १०।१२१।६; वा० य० ३२।६)

यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः ॥
(ऋ० १०।१२१।५; वा० य० ३२।६)

य इमे द्यावा पृथिवी तस्तभाना अधा यद्रोदसी रेजमाने।
(पिप्पलाद अ० सं०)

यस्य द्यौरुर्वी पृथिवी च मही यस्याद उर्वन्तरिक्षम्। यस्यासौ सूरो विततो महित्वा कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥

पदानि– यस्य। द्यौः। उर्वी। पृथिवी। च। मही। यस्य। अदः। उरू। अन्तरिक्षम्। यस्य। असौ। सूरः। विऽततः। महिऽत्वा। कस्मै। देवाय। हविषा। विधेम ॥

अन्वयः– कस्मै देवाय हविषा विधेम? यस्य महित्वा द्यौः उर्वी, पृथिवी च मही, यस्य महित्वा च अदः, अन्तरिक्षं उरु, यस्य महित्वा असौ सूरः विततः।

अर्थ– (कस्मै) किस (देवाय) देवता के लिये हम (हविषा) हवि समर्पण से पूजा (विधेम) करें? (यस्य महित्वा) जिसकी महिमासे (द्यौः) यह आकाश (उर्वी) बडा हुआ है, (पृथिवी

च मही) यह पृथ्वी बहुत बडी हुई है, तथा (यस्य) जिसकी महिमासे (अदः अन्तरिक्षं) यह अन्तरिक्ष (उरु) बडा विशाल हुआ है, तथा (यस्य महित्वा) जिस की महिमासे (असौ सूरः) यह सूर्य (विततः) प्रकाश फैला रहा है।

भावार्थ—जिस के सामर्थ्य से आकाश, अन्तरिक्ष और पृथ्वी ये तीनों लोक पर्याप्त बडे और विस्तृत हुए हैं, और जिसकी शक्तिसे यह सूर्य चारों ओर अपना प्रकाश फैलाता है, उस प्रभुकी उपासना सबको करनी चाहिये।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१. द्यौः = आकाश। २. उर्वी = बडी। ३. उरु = बडा। ४. अन्तरिक्षं = मध्य अवकाश, अन्तराल। ५. सूरः = सूर्य। ६. विततः = विशेष फैला हुआ।

(कस्मै देवाय हविषा विधेम) To what God may we make worship by oblation? (यस्य) Whose is the (उर्वी) spacious (द्यौः) heaven, and the (मही) great (पृथिवी) earth; (यस्य) whose is (अदः) this (उरु) wide (अन्तरिक्षं) atmosphere; and (यस्य) by whose (महित्वा) grandeur (असौ सूरः) this Sun is (विततः) so extended.

पाठभेद

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळ्हा येन स्वः स्तभितं येन नाकः। (ऋ० १०।१२१।५; वा० य० ३२।६)

यत्राधि सूर उदितो विभाति। (ऋ० १०।१२१।६)
(वा० य० ३२।७)

यस्मिन्नधि विंतत एति सूर्यः। (पिप्पलाद अ० सं०)



यस्य विश्वे हिमवन्तो महित्वा समुद्रे यस्य रसामिदाहुः। इमाश्च प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥

पदानि— यस्य । विश्वे । हिमऽवन्तः महिऽत्वा । समुद्रे । यस्य । रसाम् । इत् । आहुः । इमाः । च । प्रऽदिशः । यस्य । बाहू इति । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥५॥

अन्वयः— कस्मै देवाय हविषा विधेम ? यस्य महित्वा विश्वे हिमवन्तः (तिष्ठंति); यस्य (महित्वा) रसां समुद्रे इत् आहुः, च इमाः प्रदिशः यस्य बाहू ॥५॥

अर्थ— किस देवता की हम हवन से पूजा करें ? (यस्य) जिसकी (महित्वा) महिमासे (विश्वे हिमवन्तः) सब हिम-युक्त पर्वत खडे हैं, (यस्य) जिसकी महिमासे (रसां) इस भूमि को (समुद्रे) समुद्र के अन्दर है ऐसा (आहुः इत्) निश्चय से कहते हैं, तथा (इमाः प्रदिशः) ये दिशा उपदिशायें (यस्य बाहू) जिसके बाहू हैं ॥५॥

भावार्थ— जिसकी शक्तिसे ये हिमवान् पर्वत खडे हैं, जिसकी सामर्थ्यसे चारों ओर समुद्रों के बीचमें पृथ्वी रही है और ये दिशाएं जिसके बाहु हैं, उस प्रभुकी उपासना हम सबको करनी चाहिये।

मन्त्रस्थ पदोंके अर्थ ।

१ हिमवान् = बर्फानी पर्वत; २ महित्वा = महिमा, शक्ति, सामर्थ्य; ३ समुद्रः = सागर; ४ रसा = पृथ्वी, जिसके कारण मधुरादि रस वनस्पतियों में होते हैं; ५ प्रदिशः = उपदिशाएँ ।

(कस्मै देवाय हविषा विधेम ?) To what God may we make wosrhip by oblation ? (यस्य) By whose (महित्वा) might are standing (विश्वे) all the (हिमवन्तः) snowy mountains; and (यस्य) by whose might (रसां समुद्रे) this earth is in the ocean (इद् आहुः) they say; and (यस्य च) whose (बाहू) arms are (इमाः प्रदिशः) these quarters.

पाठभेद ।

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू० ॥ (ऋ० १०।१२१।४)
(वा० य० २५।१२)

इमे विश्वे गिरयो महि । (मै० सं०)

आपो अग्रे विश्वमावन्गर्भं दधाना अमृता ऋतज्ञाः । यासु देवीष्वधि देव आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६॥

पदानि—आपः । अग्रे । विश्वम् । आवन् । गर्भम् । दधानाः । अमृताः । ऋतऽज्ञाः । यासु । देवीषु । अधि । देवः । आसीत् । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥६॥

अन्वयः-- कस्मै देवाय हविषा विधेम? ऋतज्ञाः अमृताः विश्वं गर्भं दधानाः आपः अग्रे आवन्, यासु देवीषु (अप्सु) अधि देवः आसीत् ॥६॥

अर्थ—किस देवता के उद्देश्यसे हम हवनद्वारा पूजा करें? (ऋतज्ञाः) सत्य नियमसे चलनेवाले, (अमृताः) अमरधर्मसे युक्त, (विश्वं गर्भं दधानाः) सबको गर्भमें धारण करनेवाले, (आपः) जल (अग्रे आवन्) सृष्टि के प्रारम्भ में सब की रक्षा करते रहे, (यासु देवीषु) जिन दिव्य जलोंमें एक हि (अधि देवः) मुख्य देव (आसीत्) था ॥६॥

भावार्थ— सृष्टि के प्रारम्भ में जो एकही प्रभु था, जिसके चारों ओर जल ही जल था, इस जलने संपूर्ण विश्व के बीजों को अपने अंदर धारण किया था और जो उन सब की रक्षा कर रहा था, जो अटल नियमों से अमरपन की रक्षा कर रहा था। यह सब जिसकी शक्ति से होता था, उसीकी उपासना हम सब को करनी चाहिये।

मंत्रस्थ पदोंके अर्थ।

१ अग्रे = प्रारम्भमें, आदिसृष्टि में; २ गर्भ = गर्भ, अन्दर; ३ अमृत = अमर; ४ ऋतज्ञ = सत्य नियम जानना, सत्य जानना, सत्य ज्ञान।

(कस्मै देवाय हविषा विधेम?) To what God may we make worship by oblation? (अधिदेवः) The sole over Lord who (आसीत्) was (यासु देवीषु) above the divine, (अमृताः) immortal and (ऋतज्ञाः) order-knowing (आपः) waters; and those waters (आवन्) protected and (दधानाः) held (विश्वं गर्भं) all the germs (अग्रे) in the beginning.

पाठभेद

आपो ह यद्बृहती विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।

(ऋ० १०।१२१।७; वा० य० २७।२५)

यो देवेष्वधि देव एक आसीत् ।

(ऋ० १०।१२१।८; वा० य० २७।२६)

आपो यस्य विश्वमायुर्दधाना गर्भं जनयन्त मातरा ।
तत्र देवानामधि देव आस्य एकस्यूणे विमते दृढे अग्रे ।

(पिप्पलाद अ० सं०)

१ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीमुत द्यां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥७॥

पदानि-- हिरण्यऽगर्भः । सम् । अवर्तत । अग्रे । भूतस्य । जातः । पतिः । एकः । आसीत् । सः । दाधार । पृथिवीम् । उत । द्याम् । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥७॥

अन्वयः-- कस्मै देवाय हविषा विधेम ? अग्रे हिरण्यगर्भः सं अवर्तत । सः भूतस्य एकः पतिः जातः आसीत् । सः पृथिवीं उत द्यां दाधार ॥५॥

अर्थ- किस देवता की हम हवनद्वारा उपासना करें ? (अग्रे) प्रारंभ में (हिरण्यगर्भः) सुवर्णको अपने अन्दर धारण करनेवाला (सं अवर्तत) प्रकट हुआ था। (सः) वह (भूतस्य) भूतों का

(एकः पतिः) एकही स्वामी (जातः आसीत्) हुआ था। (सः) उसीने (पृथिवीं) भूमि को (उत) और (द्यां) आकाश को (दाधार) धारण किया था।

भावार्थ–जो सृष्टिके आरम्भमें प्रकट हुआ था, जिसके बीचमें उत्तम वर्ण के सूर्यादि लोक थे, जिसने आकाश और पृथ्वी को आधार दिया था, जो सब सृष्टिका एकमात्र प्रभु था, उसी की उपासना सबको करनी चाहिये।

मन्त्रस्थ पदोंके अर्थ।

१ हिरण्यगर्भ = सोना जिसके बीचमें है, उत्तम वर्णवाले तेजस्वी पदार्थ जिसके पेटमें हैं। २ भूत = बनी वस्तु, उत्पन्न हुए पदार्थ, पञ्चमहाभूत। ३ जातः = प्रसिद्ध, हुआ।

(कस्मै देवाय हविषा विधेम) To what God may we make worship by oblation? (अग्रे) In the beginning (समवर्तत) evolved the (हिरण्यगर्भः) golden germ, who (जातः आसीत्) from the beginning was (एकः पतिः) sole Lord (भूतस्य) of all creation and (स दाधार) He held (पृथिवीं उत द्यां) earth and heaven firmly.

आपो॑ व॒त्सं ज॒नय॑न्ती॒र्गर्भ॑म॒ग्रे समैर॑यन्।
तस्यो॒त जाय॑मान॒स्योल्ब॑ आसीद्धिर॒ण्ययः॒ कस्मै॑
दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥८॥

पदानि– आपः । वत्सम् । जनयन्तीः । गर्भम् । अग्रे । सम् । ऐरयन् । तस्य । उत । जायमानस्य । उल्बः । आसीत् । हिरण्ययः । कस्मै । देवाय हविषा । विधेम ॥८॥

अन्वयः– कस्मै देवाय हविषा विधेम ? अग्रे आपः वत्सं जनयन्तीः, गर्भं समैरयन्, उत तस्य जायमानस्य हिरण्ययः उल्वः आसीत् ।

अर्थः– किस देवताकी उपासना हम करें ? (अग्रे) प्रारंभमें (आपः) जल (वत्सं जनयन्तीः) पुत्रको उत्पन्न करती हुई अपने (गर्भं) गर्भ को (सं ऐरयन्) प्रेरित करती रहीं । (उत) उस समय (तस्य) उस (जायमानस्य) जन्मनेवालेका (हिरण्ययः उल्बः) सोनेका जैसा आवरण था ।

भावार्थ– प्रारंभ में जलमेंहि सब विश्वके बीज थे । उससे सृष्टि बन रही थी, उस समय बीजोंमें प्रेरणा हो गयी । जब यह बनावट होने लगी, उस समय सोनेके समान तेजस्वी आवरण सबपर पडा था । यह जिसकी शक्तिसे हुआ, वही एक प्रभु सबकी उपासना के लिये योग्य है ।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ ।

१ वत्स = बच्चा । २ समैरयन् = सम्यक् रीतिसे प्रेरणा करते रहे, गति करते रहे । ३ उल्ब = आवरण, झिल्ली; । ४ हिरण्ययः = सुवर्णसे बना, सोनेके समान ।

(कस्मै देवाय हविषा विधेम) To what God may we make worship by oblation ? (अग्रे) In the beginning (आपः) divine waters (वत्सं जनयन्तीः) generating progeny

(समैरयन्) set in motion (गर्भं) an embryo and (तस्य) that (उत) when (जायमानस्य) born, it had (उल्वः) a covering (हिरण्ययः) of gold, (that is हिरण्यगर्भ the golden egg).

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥ (ऋ० १०।१२१।१)

पदानि- हिरण्यऽगर्भः। सं। अवर्तत। अग्रे। भूतस्य। जातः। पतिः एकः। आसीत्। सः। दाधार। पृथिवीं। द्यां। उत। इमां। कस्मै। देवाय। हविषा। विधेम ॥१॥

अर्थ- प्रश्न- (कस्मै देवाय हविषा विधेम) किस प्रभुकी हम हविसमर्पणद्वारा उपासना करें? उत्तर-(अग्रे हिरण्यगर्भः समवर्तत) प्रारंभमें हिरण्यगर्भ प्रकट हुआ। (सः जातः भूतस्य एकः पतिः आसीत्) वह होते ही भूतमात्रका एकमात्र स्वामी हुआ। (सः पृथिवीं उत इमां द्यां दाधार) उसीने पृथ्वीको और द्युलोकको धारण किया।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

पदानि— यः । आत्मऽदाः । बलऽदाः । यस्यं । विश्वें । उपऽआसंते । प्रऽशिषं । यस्यं । देवाः । यस्यं । छाया । अमृतं । यस्यं । मृत्युः । कस्मैं । देवायं । हविषां विधेम ॥२॥

अर्थ- (यः आत्मदाः) जो आत्माका दाता और (बलदाः) जो बल का दाता है (यस्य प्रशिषं विश्वे देवाः उपासते) जिसकी आज्ञा सब देवतागण मानते हैं, (यस्य छाया अमृतं) जिसकी शीतल छाया अमरपन है और (यस्य [अच्छाया] मृत्युः) जिस की शीतल छाया में न रहना ही मृत्यु है ।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूवं । य ईशें अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मैं देवायं हविषां विधेम ॥३॥

पदानि— यः । प्राणतः । निऽमिषतः । महिऽत्वा । एकंः । इत् । राजां । जगंतः । बभूवं । यः । ईशें । अस्य । द्विऽपदंः । चतुःऽपदः । कस्मैं । देवायं । हविषां । विधेम ॥३॥

अर्थ- (यः प्राणतः निमिषतः जगतः) जो श्वासोच्छ्वास करनेवाले और आखोंके निमेषोन्मेष करनेवाले जगत् का (इत् एकः राजा महित्वा बभूव) निःसन्देह एकही प्रभु अपनी महिमासे हुआ है, (यः अस्य द्विपदः चतुष्पदः ईशे) जो इस द्विपाद और चतुष्पादोंका एकमात्र स्वामी है ।

यस्येमे हिमवंतो महित्वा यस्यं समुद्रं रसयां सहाहुः। यस्येमाः प्रदिशो यस्यं बाहू कस्मैं देवायं हविषां विधेम॥४॥

पदानि— यस्यं । इमे । हिमऽवंतः । महिऽत्वा । यस्यं । समुद्रं । रसयां । सह । आहुः । यस्यं । इमाः । प्रऽदिशः । यस्यं । बाहू इतिं । कस्मैं । देवायं । हविषां । विधेम ॥४॥

अर्थ- (यस्य महित्वा इमे हिमवन्तः) जिसकी महिमासे ये हिमवान् पर्वत खडे रहे हैं, (यस्य महित्वा रसया सह समुद्रं आहुः) जिसकी महिमासे पृथ्वीके साथ समुद्र हैं ऐसा कहते हैं, (यस्य महित्वा इमाः प्रदिशः यस्य बाहू) जिसकी महिमासे ये दिशा उपदिशाएं जिसके बाहु हुए हैं।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी चं दृळ्हा येन स्वः स्तभितं येन नाकः। यो अंतरिक्षे रजसो विमानः कस्मैं देवायं हविषां विधेम ॥५॥

पदानि— येनं । द्यौः । उग्रा । पृथिवी । च । दृळ्हा । येनं । स्वश्रिति स्वः । स्तभितं । येनं । नाकः । यः । अंतरिक्षे । रजंसः । विऽमानः । कस्मैं । देवायं । हविषां । विधेम ॥५॥

अर्थ— (येन द्यौः उग्रा) जिसने आकाश को उग्र तेजस्वी बनाया (येन पृथ्वी च दृढा) और जिसने पृथ्वी को सुदृढ किया है। (येन स्वः नाकः स्तभितं) जिसने द्युलोक स्वर्ग स्थिर करके धारण किया है और (यः अन्तरिक्षे रजसः विमानः) जो इस अन्तरिक्षमें अन्तराल का माप करता है, (अर्थात् अन्तरिक्ष में भरपूर भरा है)।

यं क्रंदसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने। यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६॥

पदानि—यं। क्रंदसी इति। अवसा। तस्तभाने इति। अभि। ऐक्षेतां। मनसा। रेजमाने इति। यत्र। अधि। सूरः। उत्ऽइतः। विऽभाति। कस्मै। देवाय। हविषा। विधेम ॥६॥

अर्थ— (अवसा तस्तभाने क्रन्दसी) शक्तिसे स्थिर हुए द्युलोक और भूलोक (रेजमाने) कांपते हुए (यं मनसा अभ्यैक्षेतां) जिसकी ओर मनसे देखते हैं, (यत्र अधि उदितः सूरः विभाति) जिसके अन्दर उदय को प्राप्त हुआ सूर्य चमकता है।

आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन्गर्भं दधाना जनयंतीरग्निं। ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥७॥

पदानि—आपः । ह । यत् । बृहतीः । विश्वं । आयन् । गर्भं । दधानाः । जनयंतीः । अग्निं । ततः । देवानां । सं । अवर्तत । असुः । एकः । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥७॥

अर्थ— प्रारम्भ में (बृहतीः आपः आयन्) बडे दिव्य जल प्रकट हुए। (ह यत् विश्वं गर्भं दधानाः) निःसन्देह सब विश्व बीज को अपने में धारण करते है (अग्निं जनयन्तीः) और उष्णताको उत्पन्न करते हैं। (ततः) उसीसे (देवानां एकः असुः) सब देवों का एकही प्राण (सं अवर्ततः) प्रकट हुआ।

In the beginning (बृहतीः आपः) mighty waters (आयन्) came out, (दधानाः) containing (विश्वं गर्भं) the universal germ & (अग्निं जनयन्तीः) producing fire, (ततः) thence (समवर्तत) sprang (देवानां एकः असुः) the One sole Spirit of all the deities.

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयंतीर्यज्ञम् । यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥८॥

पदानि—यः । चित् । आपः । महिना । परिऽअपश्यत् । दक्षं । दधानाः । जनयंतीः । यज्ञं । यः । देवेषु । अधि । देवः । एकः । आसीत् । कस्मै । देवाय हविषा विधेम ॥८॥

अर्थ—(यः) जो (महिना) अपने महान् सामर्थ्यसे (आपः पर्यपश्यत्) उन जलोंका निरीक्षण करता रहा, जो प्राथमिक जल

(दक्षं दधानाः) सामर्थ्य को धारण करते थे और (यज्ञं जनयन्तीः) यज्ञ को निर्माण करते थे, (यः) जो (देवेषु) सब देवताओं में (एकः अधि देवः आसीत्) एकही मुख्य प्रभु था।

(यः) Who (महिना) with his might (परि अपश्यद् चित्) surveyed (आपः) the waters, (दधानः) containing (दक्षं) productive force and (जनयन्तीः) generating (यज्ञं) sacrifice, (यः) who (आसीत्) is (एकः अधि देवः) one sole over Lord (देवेषु) of all dieties.

मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान। यश्चापश्चंद्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥९॥

पदानि– मा। नः। हिंसीत्। जनिता। यः। पृथिव्याः। यः। वा। दिवं। सत्यऽधर्मा। जजान। यः। च। अपः। चंद्राः। बृहतीः। जजान। कस्मै। देवाय। हविषा। विधेम ॥९॥

अर्थ– (यः पृथिव्याः जनिता) जो पृथ्वीका उत्पन्नकर्ता है, जो (सत्यधर्मा) सत्य नियमोंका प्रवर्तक है, (यः वा दिवं जजान) अथवा जो द्युलोक का उत्पन्नकर्ता है, तथा (यः बृहतीः चन्द्राः आपः जजान) जो महान तेजस्वी जलोंका उत्पादक है, वह (नः मा हिंसीत्) हम सबकी कभी हिंसा न करे।

(मा) Never may he (हिंसीत्) harm (नः) us, (यः पृथिव्याः जनिता) who is Bigetter of earth, (यो वा) nor he whose

(सत्यधर्मा) laws are true, and who is (दिवं जजान) Creator of heaven. (यः) He who (जजान) brought forth (बृहतीः) the great and (चन्द्रा आपः) beautiful waters.

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१०॥

अर्थ- हे (प्रजापते) प्रजा के पालक! (त्वत् अन्यः) तुझ से भिन्न दूसरा कोई भी (एतानि ता विश्वा जातानि) इन सब उत्पन्न हुए पदार्थों को (न परि बभूव) घेरनेवाला नहीं हुआ है। तूही सबको व्यापनेवाला एक मात्र प्रभु है। (यत्कामाः ते जुहुमः) जिसकी इच्छा धारण करके तेरी उपासना हम करते हैं (तत् नः अस्तु) वह हमें मिले, (वयं) हम सब (रयीणां पतयः स्याम) धनों के स्वामी बनें। ×

O (प्रजापति) Protector of creation! Only Thou (परिबभूव) comprehendest (ता एतानि विश्वा जातानि) all these created things and (न त्वद् अन्यः) none beside thee. (तत् नः अस्तु) Let that be ours, which (यत्कामाः) desire is at our heart, (जुहुमः) when we invoke (ते) thee. (वयं) May we (स्याम) be in possession of the (रयीणां पतयः) stores of riches.

× इस सूक्त के पहिले ७ तक मंत्र कुछ पाठभेदों के साथ पूर्व अथर्ववेद के सूक्त में आये हैं। वहां उनके पद पदार्थ आदि दिये हैं। शेष मन्त्रों को यहां दिये हैं। पाठक इस बातका अच्छी तरह अनुसंधान करें।

इन सूक्तों के सुभाषित।

१. **यस्य प्रशिषं विश्वे देवाः उपासते**= जिसकी आज्ञा सब देवतागण मानते हैं, ऐसा एक ही प्रभु है।

२. **अस्य द्विपदः चतुष्पदः ईशे**= इस द्विपाद और चतुष्पाद सृष्टि का एकही ईश्वर है।

३. **आत्मदाः बलदाः**= जीवन और बल देनेवाला वह प्रभु है।

४. **यः महित्वा एको राजा जगतो बभूव**= जो अपनी अपार शक्ति से जगत् का एकही प्रभु है। (**एक इद्राजा जगतो बभूव।** ऋ० १०।१२१।३)

५. **यस्य छाया अमृतं, यस्य (अच्छाया) मृत्युः**= जिस की छाया अमरपन है और जिससे दूर होना मृत्यु है। जिसका प्रतिबिम्ब–छाया– अपने आत्मामें उतरनेसे अमरत्व प्राप्त होता है, और जिसका प्रतिबिम्ब अपने में न पडने तक मृत्युका डर होता है।)

६. **यं... भियसाने रोदसी अह्वयेथाम्**= (**अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने।** ऋ० १०।१२१।६) जिस प्रभु के पास भयभीत हुए लोकलोकांतर सहाय्यके लिये प्रार्थना करते हैं (जो भी भयभीत होता है, वह उस प्रभुकी सहाय्य की प्रार्थना करता है)।

७. **यस्यासौ पन्था रजसो विमानः**=(**यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः।** ऋ० १०।१२१।५) जिस की प्राप्ति का मार्ग यह इस अन्तरालमें विमान जैसा आधार देनेवाला है (जिसकी प्राप्ति का साधन निराधार आकाश में आधार प्राप्त होनेके समान है)।

८. **यस्य द्यौरुर्वी, पृथिवी च मही यस्याद् उर्वन्तरिक्षम्**= यह बडे पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक इस प्रभु के आधार से रहते हैं।

(येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा, येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
ऋ० १०।१२१।५)

९. यस्यासौ सूरो विततो महित्वा= उसी प्रभुका फैलाया यह सूर्य उसीकी प्रभासे चमकता है। यत्राधि सूर उदितो विभाति।
ऋ०१०।१२१।६)

१०. यस्य महित्वा विश्वे हिमवन्तः= उस प्रभुकी महिमासे ये हिमालय पर्वत के शिखर चमक रहे हैं।

११. यस्य महित्वा समुद्रे रसामिदाहुः= उस प्रभु की महिमासे षड्रसों को देनेवाली पृथ्वी के ऊपर चारों ओर समुद्र है ऐसा कहते हैं। (यस्य समुद्रं रसया सहाहुः। ऋ० १०।१२१।४)

१२. आपः विश्वं गर्भं दधानाः= जल ही सबका बीज अपने अन्दर धारण करता है। (आपो वत्सं जनयन्तीगर्भमग्रे समैरयन्।
ऋ०१०।१२१।८)

१३. भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्= सब वस्तुमात्र का एकही अधिपति प्रभु ही है।

१४. स दाधार पृथिवीमुत द्याम्= वह प्रभुही पृथ्वी और आकाश को धारण करता है। (स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम्।
ऋ० १०।१२१।१)

१५. देवानां समवर्तताऽसुरेकः= देवों का एक मात्र प्राण यही प्रभु है।

१६. यो देवेष्वधिदेव एक आसीत्= जो सब देवताओंमें एकहि मुख्य देव है।

१७. जनिता पृथिव्याः = पृथ्वी का उत्पन्नकर्ता प्रभु एकही है।

१८. दिवं जजान=आकाश का उत्पन्नकर्ता प्रभु वही एक है।

१९. (सः) मा नो हिंसीत् =वह कभी हमारा घात नहीं करेगा।

२०. यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान: = उसी प्रभुने ही यह दिव्य जल निर्माण किया है।

२१. प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव = हे प्रभो! तेरे से भिन्न कोई भी दूसरा जो इस सब विश्वको घेर सके ऐसा नहीं है। अर्थात् एकमात्र तूहि विश्वव्यापक है।

२२. वयं स्याम पतयो रयीणाम् = हम सब संपूर्ण धनों के स्वामी हों। (धन हमारे ऊपर आधिपत्य न करे, परन्तु हम धनोंके स्वामी बने।)

ब्रह्मविद्या।

[अथर्व० ४।१।१-७]

(ऋषिः- वेनः। देवता- बृहस्पतिः, आदित्यः। छन्दः-त्रिष्टुप्, २,५ पुरोऽनुष्टुप्)

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः। स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥१॥

पदानि- ब्रह्म। जज्ञानम्। प्रथमम्। पुरस्तात्। वि। सीमतः। सुऽरुचः। वेनः। आवः। सः। बुध्न्याः। उपऽमाः। अस्य। विऽस्थाः। सतः। च। योनिम्। असतः। च। वि। वः ॥१॥

अन्वयः- प्रथमं पुरस्तात् ब्रह्म जज्ञानम्। वेनः सीमतः सुरुचः वि आवः। अस्य बुध्न्या उपमाः विष्ठाः। सतः च असतः च योनिं वि वः।



अर्थ—(प्रथमं पुरस्तात्) सबसे पहिले पूर्वकालमें अथवा पूर्व दिशामें (ब्रह्म जज्ञानं) ब्रह्म प्रकट हुआ। उस (वेनः) प्रकाशमान ने अपनी (सीमतः) सीमासे (सुरुचः) उत्तम किरण (वि आवः) विशेष रीतिसे प्रकाशित किये। (सः) उसीने (अस्य) अपने (बुध्न्याः) अन्दर मूलतः विद्यमान (उप-माः) समीपस्थित, उपमा देने योग्य पदार्थ (विष्ठाः= विस्थाः) विशेष रीतिसे रखे और (सः) वही (सतः च) सत् और (असतः च) असत् का (योनिं) मूल कारण (वि वः) प्रकट करता है।

भावार्थ- सृष्टि की आदि में सब से प्रथम ब्रह्म नामक एक अद्भुत सामर्थ्ययुक्त तेज प्रकट हुआ। प्रकट होनेपर उसकी अन्तिम सीमासे बहुतसे प्रकाशकिरण चारों ओर फैल गये। उसके अन्दर भी विविध पदार्थ व्यवस्था से रहे थे। उसीसे सत् और असत् ये भाव भी स्पष्ट हुए।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१ ब्रह्मन्= महाशक्ति, अद्‌भुत सामर्थ्ययुक्त सद्वस्तु, परमात्मा, ब्रह्म।
२ पुरस्तात् = सबसे प्रथम, पूर्वदिशामें, प्राचीन समय।
३ सीमतः (सीमा-तः) = सीमासे, अन्तिम परिधिसे।
४ सुरुचः (सु-रुचः) उत्तम प्रकाश।
५ वेनः = तेजस्वी, ज्ञानी, विद्वान्।
६ वि आवः = प्रकट करना।
७ बुध्न्याः = आधारपर स्थिर रहे, बीचमें विद्यमान।
८ उपमा (उप-माः) = पास रहनेवाले, समीपस्थित, उपमा देने योग्य।
९ विष्ठाः (वि-स्थाः) विशेष प्रकार स्थित, व्यवस्था से रहे।

१० सत् = जो तीनों कालोंमें एक जैसा रहता है।
११ असत् = जो तीनों कालोंमें एक जैसा नहीं रहता।
१२ योनिः = मूल कारण, जहाँसे उत्पत्ति होती है।

(प्रथमं) At first (पुरस्तात्) in the beginning, eastwards (ब्रह्म) The Supreme Being (जज्ञानं) sprang up. This (वेनः) Shining One (वि आवः) disclosed his (सु-रुचः) best flashes of light (सीम-तः) from his highest points. Then (सः) He disclosed (अस्य) his (उप-माः) nearest (बुध्न्याः) fundamental forms (वि-स्थाः) kept in special order, and He (वि वः) showed clearly (योनिं) the womb of (सतः) the existent and (असतः) non-existent.

इयं पित्र्या राष्ट्र्येत्वग्रे प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठाः। तस्मा एतं सुरुचं ह्वारमह्यं घर्मं श्रीणन्तु प्रथमाय धास्यवे ॥२॥

पदानि– इयम्। पित्र्या। राष्ट्री। एतु। अग्रे। प्रथमाय। जनुषे। भुवनेऽस्थाः। तस्मै। एतम्। सुऽरुचम्। ह्वारम्। अह्यम्। घर्मम्। श्रीणन्तु। प्रथमाय धास्यवे ॥२॥

अन्वयः– इयं पित्र्या राष्ट्री अग्रे एतु। प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठाः। तस्मै प्रथमाय धास्यवे एतं सुरुचं अह्यं ह्वारं घर्मं श्रीणन्तु ॥२॥

अर्थ- (इयं) यह (पित्र्या राष्ट्री) पितासे उत्पन्न हुई तेजस्विनी शक्ति (अग्रे एतु) आगे बढे, जो (प्रथमाय जनुषे) प्रथम जन्म लेनेवालेके लियेहि (भुवने-स्थाः) इस लोकमें रही है। (तस्मै प्रथमाय धास्यवे) उस पहिले उत्पन्नके धारणकर्ता के लिये (एतं सुरुचं) इस उत्तम तेजस्वी रुचिकर (अह्वारं घर्मं) प्राप्त करने योग्य गतिमान् उष्ण अन्नको (श्रीणन्तु) सिद्ध करें।

भावार्थ- उस परम पिता परमात्मासे तेजस्विनी मातृशक्ति उत्पन्न होकर अपना प्रजनन का कार्य करनेके लिये आगे बढी, क्योंकि वह इसी कार्य के लिये वहां रही थी। उससे उत्पन्न हुए पहिले धारणशक्ति अपनेमें रखनेवाले के लिये- अन्नप्राशन करनेवाले के लिये- रुचिकर तेजस्वी प्राप्त करने योग्य उष्ण अन्न यज्ञकर्ता लोग पकावें, जो खाकर वे पुष्ट बनें।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१ पित्र्या = पितासे उत्पन्न, पितासे प्राप्त, उत्तम पितासे आयी।

२ राष्ट्री = (राजते सा) = जो प्रकाशयुक्त है, जो चमकती है, मातृशक्ति, प्रजननशक्ति, वाणी, विश्वजननी, रानी।

३ जनुष्= जन्म लेनेवाला, मनुष्य, प्राणी।

४ भुवने-स्थाः= भुवन में रहनेवाला, विश्वव्यापक।

५ सुरुचं= उत्तम प्रकाशयुक्त, सुंदर।

६ ह्वारं - कुटिल।

Let (इयं) this (राष्ट्री) shining energy, (भुवने-स्थाः) always standing in the world, & (पित्र्या) having best fatherly power, (एतु) move (अग्रे) in the front (प्रथमाय)

for (जनुषे) generation. (श्रीणन्तु) Let them prepare (एतं) this (सुरुचं) well shining (ह्वारं) moving crookedly and (अह्यं) active (घर्मं) hot drink (तस्मै) for that (प्रथमाय) first one who is (धास्यवे) desirous of food.

प्र यो जज्ञे विद्वानस्य बन्धुर्विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति। ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्यान्नीचैरुच्चैः स्वधा अभि प्र तस्थौ ॥३॥

पदानि— प्र। यः। जज्ञे। विद्वान्। अस्य। बन्धुः। विश्वा। देवानाम्। जनिम। विवक्ति। ब्रह्म। ब्रह्मणः। उत्। जभार। मध्यात्। नीचैः। उच्चैः। स्वधाः। अभि। प्र। तस्थौ ॥३॥

अन्वयः— यः अस्य विद्वान् बन्धुः प्र जज्ञे विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति। ब्रह्म ब्रह्मणः मध्यात् उज्जभार। उच्चैः नीचैः स्वधा अभि प्र तस्थौ ॥३॥

अर्थ—(यः) जो (अस्य विद्वान् बन्धुः) इसका विद्वान् भाई (प्र जज्ञे) उत्पन्न हुआ, प्रकट हुआ, वह (विश्वा देवानां जनिमानि) सब देवोंके जन्म (विवक्ति) विशेष प्रकार स्पष्ट करके कहता है। वही (ब्रह्म) ज्ञान (ब्रह्मणः मध्यात्) ब्रह्मके बीच में से (उत् जभार) ऊपर लाता है, (उच्चैः नीचैः) ऊपरसे और नीचेसे (स्व-धाः) अपनी धारक शक्तियां भी (अभि प्र तस्थौ) प्रकट करता है।

भावार्थ- इस सृष्टिका जो बन्धुके समान हितकारी ज्ञानी प्रकट हुआ, वही सूर्यादि सब देवताओंकी उत्पत्तिको जानता और अन्योंको कहता है। उसीने परब्रह्मसे ज्ञान प्राप्त कर फैलाया और ऊपरनीचे अपनीहि धारक शक्तियां कैसी फैलती हैं, यह भी बताया।

मंत्रस्थ पदोंका अर्थ।

१ **बन्धुः** = भाई, बांधव, हितकारी, प्रबन्धकर्ता, बांधनेवाला, सबको इकट्ठा बांधकर एकत्र रखनेवाला।
२ **जनिमा** = जन्म, उत्पत्ति।
३ **विवक्ति** = प्रवचन करता है, विवरण करके कहता है।
४ **ब्रह्मन्** = ज्ञान, आत्मा, मन्त्र, वेद, परमात्मा, परब्रह्म।
५ **स्वधाः** (स्व+धा) = अपनी धारक शक्ति, अन्न, पेय।

He, (यः) who (प्र जज्ञे) was born as (अस्य) his (विद्वान् बन्धुः) all-knowing brother, (विवक्ति) declareth (विश्वा जनिमा) all the generations (देवानां) of all the deities. He (उज्जभार) hath taken up (ब्रह्म) his knowledge (ब्रह्मणः मध्यात्) from the midst of the Supreme Being, and He (अभि प्र तस्थौ) spreadeth forth his (स्वधाः) powers of preservation (उच्चैः नीचैः) upwards and downwards.

स हि दिवः स पृथिव्या ऋतस्था मही क्षेमं रोदसी अस्कभायत्। महान् मही अस्कभायद्वि जातो द्यां सद्म पार्थिवं च रजः ॥४॥

पदानि– सः । हि । दिवः । सः । पृथिव्याः । ऋतऽस्थाः । मही इति । क्षेमम् । रोदसी इति । अस्कभायत् । महान् । मही । इति । अस्कभायत् । वि । जातः । द्याम् । सद्म । पार्थिवम् । च । रजः ॥४॥

अन्वयः– हि सः दिवः, सः पृथिव्याः, ऋतस्थाः मही रोदसी क्षेमं अस्कभायत् । सः जातः महान्, मही द्यां रजः पार्थिवं सद्म च, वि अस्कभायत् ॥४॥

अर्थ- (हि) निःसंदेह (सः) उस ईश्वरने (दिवः) द्युलोक के तथा (सः पृथिव्याः) उसीने पृथ्वी के (ऋत-स्थाः) नियमोंको जाननेवालेने (मही रोदसी) इन बडे दोनों लोकों रूपी (क्षेमं) घर को (अस्कभायत्) सुस्थिर किया । (सः) उसीने (जातः) प्रकट होते ही (महान्) बडा होकर और (द्यां) द्यु-लोक को (रजः) अन्तरिक्ष को और (पार्थिवं सद्म च) पृथ्वी के घर को (वि अस्कभायत्) सुस्थिर किया ।

भावार्थ— निःसंदेह वह सत्य नियमों को जानता है और द्युलोक और पृथ्वीरूपी घर का स्थिर प्रबंध करता है। यही तीनों लोकों को अपने अपने स्थान में सुरक्षित रखता है।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ ।

१ दिवः = द्युलोक, आकाश । २ ऋत-स्थः = सत्य नियमों के अनुसार व्यवहार करनेवाला, सत्य नियमों में स्थिर रहनेवाला । ३ क्षेमं= घर, निवासस्थान, कल्याण, हित, योगक्षेम । ४ रोदसी =

आकाश और पृथ्वी, स्वर्ग और पृथ्वी, द्युलोक और पृथ्वी। ५ सद्म = घर, स्थान, बैठने का स्थान। ६ रजः = अन्तरिक्ष, मध्य लोक। ७ स्कभ् = स्थिर करना।

(हि) For (सः) He, who is (ऋत-स्थाः) true to the law (दिवः) of the heaven and (सः पृथिव्याः) of the earth, (अस्कभायत्) fixed his (क्षेमं) abode in (मही रोदसी) both the great firmaments. (महान्) The great one, (जातः) when born (वि अस्कभायत्) fixed apart (मही) the mighty ones, (द्यां) the heaven, (पार्थिवं सद्म) earthly home (च रजः) and mid-region.

स बुध्न्यादाष्ट्र जनुषोऽभ्यग्रं बृहस्पतिर्देवता तस्य सम्राट्। अहर्यच्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्टाथ द्युमन्तो वि वसन्तु विप्राः ॥५॥

पदानि— सः। बुध्न्यात्। आष्ट्र। जनुषः। अभि। अग्रम्। बृहस्पतिः। देवता। तस्य। सम्ऽराट्। अहः। यत्। शुक्रम्। ज्योतिषः। जनिष्ट। अथ। द्युऽमन्तः। वि। वसन्तु। विप्राः ॥५॥

अन्वयः— सः जनुषः बुध्न्यात् अग्रं अभि आष्ट्र। बृहस्पतिः देवता तस्य सम्राट्। यत् ज्योतिषः शुक्रं अहः जनिष्ट। अथ द्युमन्तो विप्राः वि वसन्तु ॥५॥

अर्थ—(सः) वह (जनुषः) जन्म के (बुध्न्यात्) मूलस्थान से (अग्रं) उच्च स्थिति को (अभि आष्ट्र) सब प्रकारसे प्राप्त हुआ। वही (बृहस्पतिः) बृहस्पति (देवता) देवता (अस्य) इस विश्व का (सम्राट्) एक मात्र महाराजा है। (यत्) जब (ज्योतिषः) प्रकाशका (शुक्रं अहः) शुभ्र दिन (अजनिष्ट) प्रकट हुआ (अथ) तब (द्युमन्तः विप्रः) तेजस्वी विप्र (वि वसन्तु) विशेष रीतिसे निवास करने लगें।

भावार्थ—जन्म लेनेके लिये प्रथम स्थिति से उन्नत होते होते वह अत्यन्त उच्च अजन्मा अवस्था को प्राप्त होता है। यह ज्ञानमय देव ही संपूर्ण विश्व का सम्राट् है। जब इस के प्रकाश का शुभ्र दिन शुरू होता है, तब ही तेजस्वी ज्ञानी जन अपना उच्च जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

मन्त्रस्थ पदोंके अर्थ।

१ बुध्न्यः = मूलस्थान, अधोभाग। २ जनुषः = जन्म। ३ अग्र = अन्त, उच्च, अन्तिम। ४ बृहस्पतिः = ज्ञानपति। ५ विप्र = ज्ञानी, सन्त, महन्त।

(सः) He, (बुध्न्यात्) from the depth (जनुषः) of the birth, (अभि आष्ट्र) hath attained (अग्रं) unto the summit; then (बृहस्पतिः) the Brihaspati-the protector of knowledge-was (देवता) the divinity and (सम्राट्) the sole Ruler (अस्य) of this world. When (ज्योतिषः) from his light (शुक्रं अहः) bright day is born, then the (विप्राः) sages (वि वसन्तु) will live (द्युमन्तः) with all their lustre.

नूनं तद॑स्य काव्यो हि॑नोति म॒हो दे॒वस्य॑ पू॒र्व्यस्य॒ धाम॑। ए॒ष ज॑ज्ञे ब॒हुभिः॑ सा॒कमि॒त्था पू॒र्वे अर्धे॒ विषि॑ते स॒सन्नु॥६॥

पदानि-- नूनम् । तत् । अस्य । काव्यः । हिनोति । महः । देवस्य । पूर्व्यस्य । धाम । एषः । जज्ञे । बहुऽभिः । साकम् । इत्था । पूर्वे । अर्धे । विऽसिते । ससन् । नु ॥६॥

अन्वयः-- काव्यः अस्य पूर्वस्य महः देवस्य तत् धाम नूनं हिनोति । एष इत्था बहुभिः साकं जज्ञे पूर्वे अर्धे विषिते ससन् नु ॥६॥

अर्थ-(काव्यः) कवि (अस्य पूर्व्यस्य) इस प्राचीन (महः देवस्य) बडे देवका (तत् धाम) वह स्थान (नूनं हिनोति) निःसंदेह प्राप्त करता है। (एषः) यह (इत्था) इस तरह (बहुभिः साकं) बहुतों के साथ (जज्ञे) प्रकट हुआ, परन्तु (पूर्वे अर्धे विषिते) पूर्वदिशा का अर्ध खुलने पर भी वे अन्य (ससन्) सोते रहे, (नु) यह आश्चर्य है ।

भावार्थ— ज्ञानी हि निःसंदेह इस सबसे प्राचीन महादेव के स्थान को प्राप्त करता है। यद्यपि यह ज्ञानी बहुत अन्यों के साथ जन्मा था, तथापि जब उदय हुआ, तब अन्य सोते रहे और यह ज्ञानी जागता रहा, इस लिए यह कृतार्थ हुआ ।

मन्त्रस्थ पदोंके अर्थ ।

१ काव्य=कवि, ज्ञानी, तत्त्वज्ञ, क्रान्तदर्शी । २ पूर्व्यः =प्राचीन, पुराण पुरुष । ३ धाम=स्थान । ४ पूर्वे अर्धे=पूर्व दिशा का आधा भाग । ५ विषित=खुला हुआ । ६ ससन् (सस्)=सोना, निद्रित रहना, आलसी रहना, पुरुषार्थ न करना ।

(काव्यः) The sage poet (नूनं) verily (हिनोति) reaches (धाम) the abode (अस्य महः) of this Great (पूर्व्यस्य) primeval (देवस्य) God. (एषः) He (इत्था जज्ञे) was thus born (बहुभिः साकं) with many more beside him, but they all (ससन्) slumbered (तु) when (पूर्वे अर्धे) the eastern half (विषिते) was opened.

योऽथर्वाणं पितरं देवबन्धुं बृहस्पतिं नमसाव च गच्छात्। त्वं विश्वेषां जनिता यथासः कविर्देवो न दभायत्स्वधावान् ॥७॥

पदानि– यः । अथर्वाणम् । पितरम् । देवऽबन्धुम् । बृहस्पतिम् । नमसा । अव । च । गच्छात् । त्वम् । विश्वेषाम् । जनिता । यथा । असः । कविः । देवः । न । दभायत् । स्वधाऽवान् ॥७॥

अन्वयः– यः अथर्वाणं देवबन्धुं पितरं बृहस्पतिं नमसा 'यथा त्वं विश्वेषां जनिता असः' इति च अव गच्छात् । कविः स्वधावान् देवः (तं) न दभायत् ॥७॥

अर्थ— (यः) जो (अ–थर्वाणं) अचञ्चल, स्थिर, (देव-बन्धुं) सब देवों का बन्धु, (पितरं) सब का पिता, (बृहस्पतिं) ज्ञानपति परमेश्वर को (नमसा) नम्रतापूर्वक "हे देव। (यथा) निःसंदेह (त्वं) तू (विश्वेषां जनिता असः) सबका उत्पादक है," ऐसा

(अवगच्छात्) जानता है, (तं) उस का (कविः स्वधावान् देवः) ज्ञानी स्वयं समर्थ देव (न दभायत्) नाश नहीं करता।

भावार्थ— जो परमेश्वर को सब का पिता, सब का बन्धु, सर्वाधार, सर्वज्ञ और सब का उत्पादक जानता है, उसका नाश नहीं होता, क्योंकि वही ईश्वर उसकी रक्षा करता है।

मन्त्रस्थ पदोंके अर्थ।

१ **अथर्वा**=अचञ्चल, स्थिर, सुदृढ । **थर्व**=गति, चंचलता, अस्थिर। २ **देवबन्धु**= देवताओं को इकट्ठा करनेवाला, देवों का हितकर्ता । ३ **दभ्**= नाश करना। ४ **स्व-धा-वान्** = अपनी निज धारण-शक्ति से रहनेवाला।

(यः) Who thus (अवगच्छात्) shall approach the (अथर्वाणं) non-moving, (देवबन्धुं) brother of deities, (पितरं) father of all, and (बृहस्पतिं) all-knowing God and (नमसा) worship him (यथा) as (त्वं) 'Thou art (विश्वेषां जनिता) the creator of all things.' (कविः) This wise (स्वधावान्) selfdependent (देवः) God (न दभायत्) never injures (तं) him.

गूढ विद्या का सूक्त।

वेद में अनेक गूढ आत्मविद्या के सूक्त हैं, उन में से यह एक है। अध्यात्मविद्या के सूक्त समझने के लिये अत्यंत कठिन होते हैं, अतः वारंवार मनन किये विना समझ में नहीं आते। ऐसे सूक्तों का यह एक नमूना यहां दिया है। जो पाठक विशेष मनन करेंगे, वे अच्छे मनन के पश्चात् हि इसको समझ सकते हैं। निम्न लिखित प्रकार इसका मनन हो सकता है—

(१)

(१) सबसे पहिले ब्रह्म सर्वत्र गुप्त–अप्रकट–था।(२) (प्रथमं पुरस्तात् ब्रह्म जज्ञानं) पश्चात् वह गुप्त ब्रह्म सृष्टि के आदि में अति प्राचीन काल में प्रकट हुआ। (३) वह ब्रह्म प्रकट होते हि उस का रूप (वेनः=कांतः) सब को प्रिय होनेयोग्य था, (सीमतः सुरुचः वि आवः) उसी की सीमासे विविध प्रकाश के किरण फैलने लगे। (४) उसके अन्दर (बुध्न्याः उपमाः विष्ठाः) अनन्त पदार्थ विशेष व्यवस्था से रहे थे, और वही (सतः असतः च योनिं) सत् असत्, चेतन जड का आदि–कारण था।

(२)

यह जो (सतः असतः च योनिः) चेतन और जड का आदि–कारण कहा है, उसी का नाम (पित्र्या राष्ट्री) पितृशक्ति से युक्त प्रकाशमय आदिशक्ति है, वह (भुवने–स्थाः) सब भुवनों में, सब वस्तुओं में रहती है, अर्थात् वह व्यापक है। यह आदिशक्ति, सबकी जननी (प्रथमाय जनुषे अग्रे एतु) सब से प्रथम सृष्टि निर्माण करनें के लिये मुख्य प्रेरणा आगे होकर कर देती है। इसीसे सब सृष्टि की उत्पत्ति होती है। इस सृष्टि में भोजन करनेवाले और न करनेवाले ऐसे दो भेद होते हैं। वेद में इन को 'साशन, अनशन' ऐसा (ऋ० १०।९०।४ में) कहा है। जो सृष्टि अन्नभक्षण करनेवाली है (तस्मै धास्यवे सुरुचं घर्मं श्रीणन्तु) उस खानेवालों के लिये उत्तम अन्न तैयार किया जावे, जिसको खाकर वे प्राणी पुष्ट हों और कार्य करने में समर्थ बनें।

(३)

इस प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति होनेपर, कई लोग विद्वान् होकर अपनी उन्नति करने लगते हैं। उनमें से (यः विद्वान्) जो ज्ञानी हुआ और (बन्धुः) सब के साथ बंधुत्व का व्यवहार करने लगा, जो विश्वबंधु अथवा विश्वमित्र हुआ, वह श्रेष्ठ होकर (देवानां विश्वा जनिमा विवक्ति) अग्नि, जल,..

वायु आदि सब देवताओं की उत्पत्ति के संबंध के नियमों का यथातथ्य वर्णन करता है, इतना ज्ञान उसको प्राप्त होता है। वही इस विश्व के (**मध्यात् नीचैः उच्चैः**)बीचमेंसे नीचेसे और उच्च स्थानसे, अर्थात् विश्वमें से हरएक वस्तु में स्थित (**ब्रह्मणः ब्रह्म उज्जभार**) ब्रह्म से यह ज्ञान और सामर्थ्य प्राप्त करता है, इस ज्ञानसे (**स्व-धाः अभिप्रतस्थौ**) आत्माकी अद्भुत निज शक्तियाँ हि चारों ओर से उसके सामने प्रकट होती हैं। अतः वह सर्वत्र विश्व में ब्रह्म को ओतप्रोत देखता है।

(४)

वह परमात्मा (**ऋत-स्थाः**) सत्य नियमों में सदा स्थिर रहनेवाला है, कभी ऊटपटांग कार्य नहीं करता, उसीने (**दिवः पृथिव्याः क्षेमं अस्कभायत्**) आकाशसे पृथ्वीपर्यंत के संपूर्ण विश्वको अपना घर बनाया है, अथवा इस विश्व के योगक्षेम का सुस्थिर प्रवंध किया है। (**द्यां रजः पार्थिवं सद्म च अस्कभायत्**) उसने आकाश, अन्तरिक्ष और पृथ्वी को अपने स्थान में स्थिर किया, यही उसका घर है, क्योंकि इसमें हि वह रहता है।

(५)

मनुष्य सबसे प्रथम (**जनुषः बुध्न्यात्**) जन्ममरणकी सब से नीचे की अवस्था में रहता है, उससे ऊपर उठते उठते वह एक समय (**अग्रं अभि आष्ट्**) उच्चतम अमृत-अवस्था को प्राप्त करता है। साधक की यही उन्नति है। इस समय इस की उपास्य (**देवता बृहस्पतिः**) देवता ज्ञानपति परमात्मा ही है, इस समय यह साधक उसको (**अस्य सम्राट्**) इस संपूर्ण विश्व का एक ही सम्राट मानता है। इस परमात्मा के (**ज्योतिषा शुभ्रं अहः**) प्रकाश से जो शुभ्र तेजस्वी दिन (**अजनिष्ट**) बनता है, उसी शुद्ध दिनमें (**द्युमन्तः विप्राः**) परमेश्वर की कांतिसे कांतिमान् हुए हुए ज्ञानी जन (**वि वसंतु**) सर्वत्र विचरते हैं। ऐसे ज्ञानी ही इस विश्व में संचार करें। जब ऐसे ज्ञानियोंसे यह विश्व भर जायगा, तभी इस भूमिपर स्वर्गधाम होगा।

(६)

(काव्यः) ज्ञानी हि **(अस्य पूर्वस्य महः देवस्य धाम)** इस पुराण पुरुष परमात्माका धाम **(हिनोति)** प्राप्त करता है। यद्यपि यह साधक **(बहुभिः साकं जज्ञे)** अनेकों के साथ जन्मा था, इस के जन्मके समय अनेक मनुष्य जन्मे थे, तथापि वे **(पूर्वे अर्धे विषिते ससन्)** पूर्व दिशामें सूर्य का उदय होकर दिशा खुल जाने के समय सोतेहि रहे थे, अतः वे वैसे हि रहे और यह जागता रहा, इसलिये यह उन्नति को प्राप्त हुआ और अमरपन का भागी हुआ। इसलिये साधकको सदा सावध रहना चाहिये।

(७)

(अथर्वाणं देवबन्धुं) शांत गंभीर देवोंका सहायक **(पितरं बृहस्पतिं)** परमपिता ज्ञानस्वरूप परमात्मा ही **(विश्वेषां जनिता)** सबोंका जनक है, **(यः अवगच्छात्)** ऐसा जो जानता है और **(नमसा)** उसको नमन करता है, उसकी भक्ति से उपासना करता है, **(तं)** उस भक्त को **(कविः स्वधावान् देवः)** ज्ञानी स्वयंभू देव परमेश्वर **(न दभायत्)** कभी नष्टभ्रष्ट नहीं करता, उसको बचाता और उन्नत करता है।

× × ×

इस तरह वारंवार मनन करने से इस सुक्त का आशय मनमें प्रकट होने लगता है। इस सूक्तके अनेक अर्थ किये जा सकते हैं, इनकी सुचना मन्त्रस्थ पदोंके अर्थ देते समय एक पद के अनेक अर्थ देकर, तथा हिंदी और अंग्रेजी में कुछ अर्थ का भेद दर्शाकर बताई है। परंतु पाठक इस समय उन अनेकविध अर्थों के पीछे न पडें, एक ही सरल अर्थ जानें और मननद्वारा समझने का यत्न करें।

स्मरण रखनेयोग्य वाक्य ।

१. प्रथमं ब्रह्म जज्ञानं, सीमतः सुरुचः वि आवः = पहले ब्रह्म प्रकट हुआ और उसकी सीमासे प्रकाश फैलने लगा।

२. सतश्च असतश्च योनिं वि वः= यहीं सत्-असत् [चेतन—जड़, पुरुष–प्रकृति, क्षेत्रज्ञ–क्षेत्र] का मूल कारण प्रकट हुआ।

३. इयं भुवनेष्ठाः पित्र्या राष्ट्री जनुषे अग्रे एतु = यह सब भुवनों में रहनेवाली पितृशक्ति से युक्त तेजस्वी आदिशक्ति सृष्टि उत्पत्ति करने के लिये आगे होकर प्रेरणा करे, करती है।

४. विद्वान् विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति = ज्ञानी सब देवों की उत्पत्ति का ज्ञान उपदेशद्वारा कहता है–अग्नि, जल, सूर्य के विषय में यथार्थ ज्ञान कहता है।

५. ब्रह्मणः मध्यात् नीचैः उच्चैः ब्रह्म उज्जभार= ब्रह्म के उच्च मध्य और निम्न स्थानों से अर्थात् संपूर्ण ब्रह्म से ज्ञान प्राप्त होता है, संपूर्ण ब्रह्म ज्ञानमय होनेसे उससे ज्ञान प्रकट होता है।

६. स्वधाः अभि प्र तस्थौ= आत्मा की धारणशक्तियाँ उसी ब्रह्म से प्रकट होती हैं।

७. दिवः पृथिव्याः रजः सद्म सः अस्कभायत्= तीनों लोक मिलकर जो एक घर है, उस घर को परमेश्वरनेहि स्थिर किया है।

८. सः ऋतस्थाः= वह सत्य नियमों में रहनेवाला है। वह सुस्थिर नियमों से कार्य करता है।

९. सः जनुषः बुध्न्यात् अग्रं अभि आष्ट्= वह जन्म के मूल से अजन्मावस्था के अग्रभाग को प्राप्त करता है।

१०. अस्य बृहस्पतिः देवता सम्राट्= इस विश्व का एक मात्र महाराजा परमेश्वर ही है, दूसरा कोई नहीं।

११. ज्योतिषः शुक्रं अहः अजनिष्ट, द्युमन्तो विप्राः वि वसन्तु= जब परमात्मा की ज्योतिका प्रकाश होकर दिन खुलता है, तब ज्ञानी संतमहन्त सुखसें विचरते हैं।

१२. नूनं काव्यः पूर्व्यस्य महो देवस्य धाम हिनोति= निश्चय से ी सनातन महादेव का स्थान ज्ञानी ही प्राप्त करता है।

१३. एष बहुभिः साकं जज्ञे, पूर्वे अर्धे विषिते ससन्= यह ज्ञानी यद्यपि बहुतों के साथ जन्मा था, तथापि अन्य लोक सूर्य-उदय होनेके समय सोते रहे, इसलिये प्रकाशसे लाभ न उठा सके। यह जागता रहा, इसलिये लाभ उठाने में समर्थ हुआ।

१४. यः पितरं नमसा अव गच्छात्, तं कविः न दभायत्= जो अपने परम पिता को नमस्कार करके जानता है, उसका ज्ञानी पिता कभी नाश नहीं करता।

भाईबहिन के विवाह का निषेध।

[ऋ० १०।१०।१-१४; अथर्व० १८।१-१४]

[ऋषिः-(१,३,५-७, ११,१३) यम और (२,४,८-१०,१२,१४) यमी। देवता-(१,३,५-७, ११,१३) यमी और (२,४,८-१०, १२,१४) यम। त्रिष्टुप्।]

ओ चित्सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान्। पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥१॥

पदानि– ओ इति । चित् । सखायं । सख्या । ववृत्यां । तिरः । पुरू । चित् । अर्णवं । जगन्वान् । पितुः । नपातं । आ । दधीत । वेधाः । अधि । क्षमि । प्रऽतरं । दीध्यानः ॥१॥

अन्वयः– (यमी आह=) सखायं सख्या ओ चित् ववृत्यां, तिरः पुरू अर्णवं चित् जगन्वान् । अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः वेधाः, पितुः नपातं आदधीत ॥१॥

अर्थ— (यमी कहती है) = (सखायं) मेरे मित्र को (सख्या) मैत्री के साथ (ओ चित्) निःसंदेह (ववृत्यां) प्राप्त करूं, वरण करूं, जिससे (तिरः पुरू) गुप्त और बडे (अर्णवं चित्) संसारसमुद्र के पार (जगन्वान्) वह जा सके । (अधि क्षमि) इस भूमि के ऊपर (प्रतरं दीध्यानः) बडे भविष्य काल का ध्यान करता हुआ (वेधाः) वह ज्ञानी (पितुः नपातं) अपने पिता के पोते को मुझ में (आदधीत) आधान करे ।

भावार्थ— (यमी बहिन अपने भाई यम से कहती है) हे भाई ! तू मेरा हितकर्ता है, अतः तेरे साथ विशेष प्रकार की मित्रता मैं करनी चाहती हूं । इस मैत्री के व्यवहार से इस संसारसमुद्र के पार तू सुख से जा सकोगे । भविष्य-कालपर ध्यान देकर हि वह व्यवहार करना है । अतः तू अपने पिताका पोता मेरे साथ उत्पन्न कर अर्थात् मुझसे विवाह करके मुझसे संतति उत्पन्न कर ।

मन्त्रस्थ पदोंके अर्थ ।

१. सखा = मित्र, सहचारी । २. अर्णवः = समुद्र, भवसागर, संसार-समुद्र । ३. तिरः = गुप्त, अप्रकट, जिस का सब भाग अदृश्य है ।

Yami says- (ओ चित्) Fain would I (ववृत्यां) win (सखायं) my friend (सख्या) to kindly friendship; so that (वेधाः) the sage (जगन्वान्) may go safely (तिरः) through (पुरू अर्णवं चित्) this wide ocean of life. (दीध्यानः) Remembering (प्रतरं) the days that will come (अधि क्षमि) on this earth, he should (आदधीत) obtain (पितुः नपातं) a son, the issue of his father.

न ते सखा सख्यं वष्टयेतत्सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति। महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ॥२॥

पदानि--न। ते। सखा। सख्यं। वष्टि। एतत्। सऽलक्ष्मा। यत्। विषुऽरूपा। भवाति। महः। पुत्रासः। असुरस्य। वीराः। दिवः। धर्तारः। उर्विया। परि। ख्यन् ॥२॥

अन्वयः-- (यमः आह=) ते सखा एतत् सख्यं न वष्टि। यत् सलक्ष्मा विषुरूपा भवाति। महः असुरस्य पुत्रासो वीराः दिवो धर्तारः उर्विया परि ख्यन् ॥२॥

अर्थ— (यम कहता है-) (ते सखा) तेरा मित्र (एतत् सख्यं) इस तरह की मित्रता (न वष्टि) नहीं चाहता, (यत्) जिसमें (सलक्ष्मा) समान लक्षणोंवाली स्त्री (विषुरूपा) विषम लक्षणों-

वाली जैसी (भवाति) हो जाती है। क्योंकि (महः असुरस्य) बडे प्राणदाता ईश्वर के (उर्विया) बडे (पुत्रासः वीराः) जो वीर पुत्र हैं, जो (दिवः धर्तारः) द्युलोक का धारण करनेवाले हैं, वे इस का (परि ख्यन्) निषेध करते हैं।

भावार्थ— (यम यमीका निषेध करता है) हे यमी! तू जिस प्रकार की मित्रता चाहती है, अर्थात् पतिपत्नीरूप रहकर भाईबहिन संतान उत्पन्न करें, यह जो तेरी इच्छा है, वैसी मित्रता मैं तेरे साथ नहीं करना चाहता। क्योंकि भाईबहिन समान लक्षणोंवाले होते हैं, परन्तु विवाह तो विषम लक्षणों से युक्त स्त्रीपुरुषों में ही होता है। अतः तेरे साथ मेरा विवाह होना असंभव है। ऐसा करने से हम दोनों के समान लक्षण होते हुए, हमें विरुद्ध लक्षणों जैसा व्यवहार परस्पर करना पडेगा। द्युलोक का धारण करनेवाले ईश्वर के महा वीर भी इस बातका निषेध ही करते हैं, इसलिये यह हो नहीं सकता।

यम और यमी ये युग्म भाई–बहिन एक ही वार गर्भ में रहे थे। यमी के कथन में आगे मन्त्र ५ में आवेगा कि हमारा विवाह गर्भ में हि ईश्वरके द्वारा हुआ है। यम इस से सहमत नहीं होता और निषेध ही करता है।

मन्त्रस्थ पदों का अर्थ।

१ **सलक्ष्मा** = समान लक्षणों से युक्त, भाई और बहिन; जो वंश, गोत्र, जाति, कुल, पिता, माता आदिसे समान होते हैं। समान लक्षणोंवालों में विवाह नहीं होना चाहिये। २ **वि–षु–रूपा**=विरुद्ध लक्षणोंसे युक्त, जो वंश, गोत्र, जाति, कुल, पिता, माता आदि से सम न हों, विषम लक्षणोंवालों में विवाह करना चाहिये। ३ **महः** = बडा ईश्वर। ४ **असुर** = (असु+र) असु अर्थात् जीवन देनेवाला। ५ **वीरः** = (वीरयति) जो दोष को दूर करता है। ६ **दिवः धर्ता** = द्युलोक का आधार। ७ **उर्विया** = बडा, महान्। ८ **परि ख्यन्** = (परि) विरुद्ध (ख्या) कहना, निषेध करना।

Yama answers-(ते सखा) Thy friend (न वष्टि) desires not (एतत् सख्यं) this kind of friendship, (यत् सलक्ष्मा) which considers a woman, who is near in kindred, (विषुरूपा) as a stranger. (पुत्रासः) The sons (असुरस्य) of the mighty Lord, (उर्विया वीराः) the great heroes, (दिवः धर्तारः) supporters of heaven (परि ख्यन्) shall condemn this.

उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित्त्यजसं मर्त्यस्य । नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्व१मा विविश्याः ॥३॥

पदानि— उशन्ति । घ । ते । अमृतासः । एतत् । एकस्य । चित् । त्यजसं । मर्त्यस्य । नि । ते । मनः । मनसि । धायि । अस्मे इति । जन्युः । पतिः । तन्वं । आ । विविश्याः ॥३॥

अन्वयः— ते अमृतासः एकस्य मर्त्यस्य एतत् त्यजसं उशन्ति घ । ते मनः अस्मे मनसि नि धायि । जन्युः पतिः तन्वं आ विविश्याः ॥३॥

अर्थ- (यमी कहती है-) (ते अमृतासः) वे अमर देव (एकस्य मर्त्यस्य) एक मनुष्यका (एतत् त्यजसं) यह त्याग (उशन्ति घ) निःसंदेह चाहते ही हैं । इसलिये (ते मनः) तेरा मन (अस्मे मनसि) मेरे मनमें (नि धायि) स्थिर कर ।

और (जन्युः पतिः) जनक पति होकर मेरे (तन्वं) शरीर के प्रति (आ विविश्याः) प्रविष्ट हो।

भावार्थ- (यमी कहती है कि, हे यम ! जो तू कहता है कि, वे अमर देव यह सम्बन्ध नहीं चाहते, इसका निषेध करते हैं, यह अशुद्ध है) निःसंदेह वे देव मनुष्य के इस तरह गर्भाधान करनेके वीर्यत्यागरूप कर्म को चाहते हैं। इसलिये तू अपना मन मेरे मनके साथ मिलाओ और मुझ में संतान उत्पन्न करनेवाला जनक और मेरा पालक पति होकर मेरा स्वीकार कर।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१ अमृतः = अमर, देव। २ त्यजस् = त्याग, दान। ३ मर्त्य = मरणधर्मा। ४ जन्युः = जननकर्ता।

Yami says- (घ) Truly (अमृतासः) those immortals (उशन्ति) want (एतत्) the (त्यजसं) progeny (एकस्य मर्त्यस्य) of the mortal; may, (ते मनः) therefore, thy mind be knit together (अस्मे मनसि) in my mind and (जन्युः पतिः) as a loving husband (तन्वं आ विविश्याः) take thy consort in me.

न यत्पुरा चकृमा कद्ध नूनमृतं वदंतो अनृतं रपेम। गंधर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नौ नाभिः परमं जामि तन्नौ ॥४॥

पदानि– न । यत् । पुरा । चकृम । कत् । ह । नूनं । ऋता ।
वदंतः । अनृतं । रपेम । गंधर्वः । अप्ऽसु । अप्या । च ।
योषा । सा । नः । नाभिः । परमं । जामि । तत् । नौ ॥४॥

अन्वयः– यत् पुरा न चकृम, कत् ह नूनम्? ऋतं वदन्तः अनृतं रपेम ? गन्धर्वो अप्सु अप्या च योषा, सा नः नाभिः, नौ तत् परमं जामि ॥४॥

अर्थ- (यम कहता है) (यत्) जो (पुरा) पूर्वसमय में (न चकृम) कभी नहीं किया था, वह (कत् ह नूनं) भला कैसे अब करें ? (ऋतं वदन्तः) सत्य बोलनेवाले हम कैसे (अनृतं रपेम) असत्य करें, या बोलें ? (गं-धर्वः) पृथ्वी का आधार पिता (अप्सु) आकाश के जलों में है और (अप्या च योषा) आप्तत्त्व की भी स्त्री है। (सा नः नाभिः) वही हमारा सब उत्पत्ति-स्थान है, और (नौ) हम दोनों का (तत् परमं जामि) वही परम संबंध भाई-बहिनपन का है।

भावार्थ— (यम कहता है) जो कभी हमारे जैसे भाईबहिनोंने पूर्वकाल में नहीं किया था, वह हम आज कैसा भला करें? हम सत्य धर्म की बातें बोलते हुए, असत्य कार्य कैसा भला करें? हमारा परम पिता परमात्मा है और हमारी प्रकृति माता है, ये दोनों हमारे कार्य का निरीक्षण कर रहे हैं और वे ही हमारी उत्पत्ति का आदि कारण हैं। हमारा परम संबंध इसी भाई-बहिनपन का स्पष्ट है। अतः इस परम संबंध का स्मरण करते हुए हम अयोग्य कार्य कैसा करें?

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१ कत्=कैसे। २ रप्=स्पष्ट भाषण करना। ३ गंधर्वः= भूमिका धारण करनेवाला, जगत् का आधार, वाणी का आधार। ४ अप्या= जलमयी, जलरूपी। ५ योषा= स्त्री। ६ नाभिः= नाभि, मध्य, केन्द्र, उत्पत्तिस्थान। ७ जामि= भाईबहिन का संबंध।

Yama answers- (यत्) What we (न चकृम) did not do (पुरा) formerly, (कत् ह नूनं) why do that now? Always (वदन्तः) speaking (ऋतं) righteousness, (अनृतं रपेम) how should we talk of unrighteousness now? (गं-धर्वः) The Supporter of the earth is (अप्सु) in the waters (in the heaven) (अप्या च योषा) and so is this dame (in the same waters or in the sky). (सा) That is (नः) our (नाभिः) central idea and (तत्) that is (नौ) our (परमं जामि) most lofty relation.

गर्भे नु नौ जनिता दंपती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः। नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ॥५॥

पदानि- गर्भे। नु। नौ। जनिता। दंपती इति दंऽपती। कः। देवः। त्वष्टा। सविता। विश्वऽरूपः। नकिः। अस्य। प्र। मिनंति। व्रतानि। वेद। नौ। अस्य। पृथिवी। उत। द्यौः ॥५॥

अन्वयः– नौ गर्भे नु विश्वरूपः सविता त्वष्टा जनिता दंपती कः। अस्य व्रतानि नकिः प्र मिनन्ति। नौ अस्य पृथिवी उत द्यौः वेद।

अर्थ— (यमी कहती है)-(नौ) हम दोनोंको (गर्भे नु) गर्भमें हि (विश्वरूपः) विश्वरूपी (सविता) सबके उत्पादक, (त्वष्टा) सब के रूप बनानेवाले (जनिता) जनक देवने (दंपती कः) दंपति बनाया है। (अस्य व्रतानि) इस कर्मों का (न किः) कोई नहीं (प्र मिनन्ति) विघात कर सकता। (नौ अस्य) हम दोनों के इस बातको (पृथिवी उत द्यौः) पृथिवी और द्युलोक ये सब अच्छी तरह (वेद) जानते हैं।

भावार्थ— (यमी कहती है) हम दोनों गर्भ में एकही समय थे, इससे सिद्ध होता है कि, सबके निर्माण करनेवाले ईश्वरने हमें जन्म से ही पति-पत्नी के नाते से ही बनाया है। ऐसी उसकी इच्छा न होती, तो वह हमें एकही समय एकहि गर्भ में एक साथ क्यों रखता? यह हमारा एक गर्भ में रहना सब को मालूम ही है। उस प्रभुके इस कृत्य का विरोध कौन भला कर सकता है? क्यों कि उसकी इच्छा का जो विरोध करेगा वह नाश को प्राप्त होगा। अतः हे यम! तू इस प्रभु-इच्छा के अनुसार बर्ताव कर।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१ गर्भः= गर्भाशय में जो रहता है, उत्पत्ति-पूर्व की अवस्था। २ जनिता= जनक, उत्पत्तिकर्ता। ३ दंपती= पति और पत्नी, भार्या और पति। ४ त्वष्टा= कारीगर, रूप बनानेवाला। ५ सविता= (सविता वै सर्वस्य प्र सविता)= सबकी उत्पत्ति करनेवाला। ६ विश्वरूपः= संपूर्ण विश्व है रूप जिसका वह देव। ७ न किः= कोई नहीं। ८ मिनन्ति= नष्टभ्रष्ट करते हैं। ९ व्रतं= कर्म। १० वेद= जानता है।

Yami says- (नु) Verily (गर्भे) in the womb (देवः) the divine (त्वष्टा) Builder, (सविता) Begetter, (विश्वरूपः) Omni-form, (जनिता) Creator (कः) made (नौ) us (दंपती) consorts. (न किः) None (प्र मिनंति) violates (अस्य व्रतानि) his deeds. (पृथिवी) The Earth (उत द्यौः) and also heaven (वेद) knows (नौ अस्य) us as such.

को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत्। बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ॥६॥

पदानि- कः । अस्य । वेद । प्रथमस्य । अह्नः । कः । ईं । ददर्श । कः । इह । प्र । वोचत् । बृहत् । मित्रस्य । वरुणस्य । धाम । कत् । ऊं इति । ब्रवः । आहनः । वीच्या । नॄन् ॥६

अन्वयः- अस्य प्रथमस्य अह्नः कः वेद? ईं कः ददर्श, इह कः प्र वोचत्? मित्रस्य वरुणस्य बृहत् धाम। हे आहनः! नॄन् वीच्या कद् उ ब्रवः?

अर्थ—(यम कहता है)- (अस्य) इस (प्रथमस्य) पहिले (अह्नः) दिन के विषय को (कः वेद) कौन भला जानता है? (ईं कः) इस को किसने (ददर्श) देखा था? और इसको (इह) यहां (कः) किसने भला (प्रवोचत्) कहा? (मित्रस्य वरुणस्य) सबके मित्र-रूप श्रेष्ठ देव का (बृहत् धाम) बहुतही बडा धाम है। हे (आ-

हनः) विषयासक्त स्त्री! (नृन्) पुरुषों के प्रति (वीच्या) कपट-बुद्धि से (कत् उ) कैसे भला तू ऐसा (ब्रवः) बोलती है?

भावार्थ—(यम कहता है)— जो तू गर्भ की बातें कहती है, वह गर्भके अन्दर की प्रथम गर्भाधान के समय की बातें ठीक ठीक कौन जानता है? किसने उसका पता किया और किसने किससे कहा? ईश्वर के ये गूढ और गहन नियम हैं, उनको कौन ठीक तरह जान सकता है कि गर्भ में दो जीव एक स्थानपर किस लिये आये? यह ठीक ठीक कोई नहीं जान सकता। हे कामान्ध स्त्री! तू ऐसी बातें पुरुषों के साथ निर्लज्ज होकर कहती है, क्या तुझे इसकी लज्जा नहीं आती?

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१ **अहः** = दिन। २ **मित्र** = हितकारी। ३ **वरुण** = वरिष्ठ, श्रेष्ठ देव। ४ **धामन्** = स्थान, घर, नियम, प्रकाश, महत्त्व, जन्म, शरीर, अवस्था, धन। ५ **आहनः** = कामासक्त, पतित होनेवाली। ६ **वीची** = लहरी, चंचलता, अस्थिरता।

Yama answers– (कः) Who (वेद) knows (अस्य) of this (प्रथमस्य अह्नः) first day? (ईं कः ददर्श) Who saw it? (कः) Who (प्रवोचत्) shall proclaim it (इह) here? (बृहत्) Great is (धाम) the law of the (मित्रस्य वरुणस्य) Friend, the Lord. (कद्) How, O (आ-हनः) lustful one! (ब्रवः) can you speak (नृन्) to men (वीच्या) with such a deceit?

यमस्य मा यम्यं१ काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय। जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद्वृहेव रथ्येव चक्रा ॥७॥

पदानि– यमस्य । मा । यम्यं । कामः । आ । अगन् । समाने । योनौ । सहऽशेय्याय । जायाऽइव । पत्ये । तन्वं । रिरिच्यां । वि । चित् । वृहेव । रथ्याऽइव । चक्रा ॥६॥

अन्वयः– यमस्य कामः, समाने योनौ सहशेय्याय, मा यम्यं आ अगन् । जाया पत्ये इव, तन्वं रिरिच्यां । रथ्या चक्रा इव चित् वि वृहेव ।

अर्थ— (यमी कहती है)- (यमस्य कामः) यमके विषय में कामविकार, (समाने योनौ) एक घरमें (सहशेय्याय) साथ रहने के लिए, (मां यम्यं) मुझ यमीके प्रति (आ-अगन्) आगया है । (जाया) स्त्री (पत्ये इव) पति के लिए जिस प्रकार सेवा करती है, उस तरह (तन्वं रिरिच्यां) मेरे शरीर को अर्पण करती हूं। जैसा (रथ्या इव) रथका मार्ग (चक्रा) चक्रके साथ जुड जाता है, उस तरह (चित् विवृहेव) हम परस्पर मिल जांय।

भावार्थ—(यमी कहती है)- हे यम ! तेरे विषय में मेरे मन के अंदर कामविकार उत्पन्न हुआ है । हम दोनों एक घरमें पतिपत्नी के नातेसे रहें और व्यवहार करें, यह इच्छा मेरे मनमें है । इसकी पूर्णता तुम करो ।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ ।

१ कामः— कामविकार, भोगेच्छा । २ योनि – घर, स्थान, उत्पत्ति-स्थान, स्त्रीजननेंद्रिय, प्रकृति । ३ शेय्य – सोना, शय्या । ४ सहशेय्य – साथ सोना, एक शय्या । ५ तनू– शरीर । ६ रिच्– पृथक् करना, जोडना। ७ विवृह् – आलिंगन देना । ८ रथ्या— मार्ग, जिसपर रथ चलते हैं, रथके सम्बन्धी ।

Yami says—(यमस्य कामं) Desire of Yama (आ अगन्) hath come unto (मा) me (यम्यं) Yami, that I may (सहशेय्याय) rest on the (समाने योनौ) same coach. I (तन्वं रिरिच्यां) would yield my body, (जाय इव) as a wife (पत्ये) to husband. Let us (चित् विवृहेव) speed to meet each other, (रथ्या चक्रा इव) like two chariot-wheels.

न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति। अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ॥८॥

पदानि– न । तिष्ठन्ति । न । नि । मिषंति । एते । देवानां । स्पशः । इह । ये । चरन्ति । अन्येन । मत् । आहनः । याहि । तूयं । तेन । वि । वृह । रथ्याऽइव । चक्रा ॥८॥

अन्वयः– ये इह चरन्ति, ते येते देवानां स्पशः न तिष्ठन्ति न निमिषन्ति। हे आहनः! मत् अन्येन तूयं याहि, तेन रथ्या इव चक्रा वि वृह ।

अर्थ—(यम कहता है)-(ये) जो (इह चरन्ति) यहां घूम रहे हैं वे (एते) ये (देवानां स्पशः) देवों के दूत (न तिष्ठन्ति) नहीं ठहरते और (न निमिषन्ति) नाहि आखें बंद करते हैं। अतः हे (आहनः) कामान्ध स्त्री! (मत् अन्येन) मुझसे भिन्न दूसरेके साथ

(तूयं याहि) शीघ्र ही चली जा। (तेन) उसके साथ हि (रथ्या चक्रा इव) रथ-चक्र के समान (वि वह) मिल जा।

भावार्थ— (यम कहता है)- हे यमी! देखों! ईश्वर के दूत सदा आंखें खोलकर सर्वत्र घूमते हुए सब के व्यवहार देखते रहते हैं। वे हमारे व्यवहार भी देखेंगे। इसलिये मैं तुम्हारे प्रस्ताव के अनुकूल कुव्यवहार-भाईबहिन का संबंध नहीं कर सकता। तू कामुक हुई है, इसलिये किसी दूसरे पुरुष के साथ जा और अपनी इच्छा के अनुसार व्यवहार उसके साथ कर।

मन्त्रस्थ पदोंके अर्थ।

१ निमिष्= आंखोंकी पलकें बंद करना और खोलना। २ स्पश्= दूत, गुप्तदूत, गुप्तचर। ३ तूयं= शीघ्र।

Yama answers- (न तिष्ठन्ति) They stand not still, (न निमिषन्ति) they never close their eyelids, (एते देवानां स्पशः) those sentinels of Gods, (ये इह चरन्ति) who wander around us here. O (आहनः) wanton! (तूयं याहि) go quickly (मत् अन्येन) with another man and (विवृह) move (रथ्या इव चक्रा) like a chariot wheel (तेन) with him.

रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत्सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात्। दिवा पृथिव्या मिथुना सबंधू यमीर्यमस्य बिभृयादजामि ॥९॥

पदानि— रात्रीभिः। अस्मै। अहऽभिः। दशस्येत्। सूर्यस्य। चक्षुः। मुहुः। उत्। मिमीयात्। दिवा। पृथिव्या। मिथुना। सबंधू इति सबंधू। यमीः। यमस्य। बिभृयात्। अजामि ॥९॥

अन्वयः— सूर्यस्य चक्षुः मुहुः उन्मिमीयात्, सः अस्मै रात्रीभिः अहभिः च दशस्येत्। दिवा, पृथिव्या सबन्धू मिथुना। यमी यमस्य अजामि बिभृयात्।

अर्थ—(यमी कहती है)-(सूर्यस्य चक्षुः) सूर्य का आंख (मुहुः) वारंवार (उन्मिमीयात्) खुले, प्रकाश देवे और वह (अस्मै) इस यम के लिये (रात्रीभिः) रात्रियों से और (अहभिः) दिनोंसे (दशस्येत्) कहे, समझाये। (दिवा) द्युलोक के साथ (पृथिव्याः) पृथ्वी का (सबन्धू) भाईबहिनपन होते हुए भी वे (मिथुना) पतिपत्नी के नाते से रहते हैं। वैसा ही (यमी) यमी (यमस्य अजामि) यम के साथ बन्धुत्वरहित सम्बन्ध (बिभृयात्) धारण करे।

भावार्थ— (यमी कहती है)—यम के सामने सूर्यप्रकाश होवे और उसको सच्चा मार्ग दीखे। दिन और रात्री से उसको प्रकाश मिले और उसे ज्ञान प्राप्त हो। दिन और रात्री, तथा द्यौ और पृथ्वी ये सहोदर भाई-बहिन होते हुए भी पतिपत्नीवत् बर्त रहे हैं, यह यम के ध्यान में आवे और यह ज्ञान होने के बाद, यम यमी के साथ बन्धुत्वरहित पतिपत्नी के नाते का संबंध धारण करे।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१ दश्= भाषण करना, नाश करना, हिंसा करना। २ मुहुः= वारंवार। ३ अजामि= भाईबन्धुके नाते का नहीं ऐसा संबंध।

Yami says-(सूर्यस्य चक्षुः) The Sun's eye (उन्मिमीयात्) may open (मुहुः) constantly (अस्मै) on him and that (दशस्यात्) may show him the way (रात्रीभिः) by nights

and (अहभिः) by days, just as (दिवा) with heaven (पृथिव्याः) the earth (मिथुना) makes one couple, though they are (सबन्धू) kindred, so (यमी) Yami (बिभृयात्) should bear (अजामि) the unbrotherly connection (यमस्य) with Yama.

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि । उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥१०॥

पदानि-- आ । घ । ता । गच्छान् । उत्ऽतरा । युगानि । यत्र । जामयः । कृणवन् । अजामि । उप । बर्बृहि । वृषभाय । बाहुं । अन्यं । इच्छस्व । सुऽभगे । पतिं । मत् ॥१०॥

अन्वयः-- ता उत्तरा युगानि घ आ गच्छान्, यत्र जामयः अजामि कृणवन् । हे सुभगे! मत् अन्यं पतिं इच्छस्व । वृषभाय बाहुं उप बर्बृहि ।

अर्थ- (यम कहता है-) (ता) वे (उत्तरा युगानि) आगे युग-दिन--(आ गच्छन्) आवेंगे, (यत्र) जिनमें (जामयः) भाई-बहिन होते हुए भी (अजामि) पतिपत्नीवत्-बन्धु न होनेके समान-व्यवहार (कृणवन्) करेंगे । ये दिन वे नहीं हैं । अतः, हे (सुभगे) उत्तम भाग्यवती स्त्री! (मत् अन्यं) मुझसे भिन्न (पतिं) दूसरे पति की (इच्छस्व) इच्छा कर । और उस (वृषभाय) बलवान् पुरुष

के लिए अपना (बाहुं) बाहु (उप बर्बृहि) अर्पण कर, दे, फैला दे ।

भावार्थ— (यम कहता है)- हे यमी ! तू जो कहती है वैसा दुराचरण करनेवाले दुष्ट लोग भविष्य काल में किसी समय कदाचित् होंगे, तो पता नहीं है । इस समय वैसा नहीं किया जा सकता । अतः मुझ भाईसे भिन्न किसी दूसरे को पति स्वीकार कर और उसके सामने अपने बाहु फैला दे । जा । मुझसे वह कुकर्म नहीं होगा ।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ ।

१ घ— निश्चयपूर्वक, अथवा पादपूरण (पादपूरण उसको कहते हैं कि जिसका कुछ भी अर्थ नहीं होता ।) २ **उत्तर**= आगे आनेवाले; भविष्यकाल में होनेवाले । ३ **वृषभ**- बलवान्, बैल जैसा हृष्टपुष्ट । ४ **सुभगा**- उत्तम भाग्यशालिनी ।

Yama answers-(घ) Surely (आ गच्छान्) there shall come (उत्तरा युगानि) those later ages (यत्र) when (जामयः) brothers and sisters (कृणवन्) will do acts that are (अजामयः) unkindly. (सुभगे) O fortunate one! (उपबर्बृहि) spread (बाहुं) your hand (वृषभाय) for the sake of a powerful hero, and (इच्छस्व) seek (अन्यं पतिं) another husband (मत्) than me.

किं भ्रातासद्यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् । काममूता बह्वे३तद्रपामि तन्वा मे तन्वं१ सं पिपृग्धि ॥११॥



पदानि– किं । भ्राता । असत् । यत् । अनाथं । भवाति । किं । ऊं इति । स्वसा । यत् । निःऽऋतिः । निऽगच्छात् । कामऽमूता । बहु । एतत् । रपामि । तन्वा । मे । तन्वं । सं । पिपृग्धि ॥११॥

अन्वयः– किं भ्राता असत्, यत् अनाथं भवाति । किं उ स्वसा यत् निर्ऋतिः निगच्छात् । काममूता एतत् बहु रपामि । मे तन्वा तन्वं सं पिपृग्धि ॥११॥

अर्थ—(यमी कहती है-) (किं भ्राता) क्या वह भाई (असत्) है (यत्) जिससे उसकी बहिन (अनाथं) अनाथ जैसी (भवाति) होगी? (किं उ स्वसा) क्या वह बहिन है, (यत्) जिससे उसका भाई (निर्ऋतिः निगच्छात्) विनाशको प्राप्त होवे ? (काममूता) काम से मूर्च्छित होकर मैं (एतत् बहु) यह बहुत (रपामि) बोल रही हूं। हे यम! (मे तन्वा) मेरे शरीर के साथ (तन्वं) अपने शरीरको (सं पिपृग्धि) जोड दे।

भावार्थ—(यमी कहती है) वह कैसा भाई है कि जिस के होते हुए उसकी बहिन अनाथ होकर फिरे ? वह बहिन भी किस काम की है कि, जो होती हुई उसका भाई नाशको प्राप्त हो ? मैं काम के वश होकर ऐसी बोल रही हूं, पर यम मेरा भाषण सुनता भी नहीं। हे यम! आओ, हम दोनों इकट्ठे रहें।

मन्त्रस्थ पदों का अर्थ।

१ अनाथं=अनाथ, असमर्थ। २ स्वसा= बहन। ३ निर्ऋतिः=विनाश, आपत्ति, दुर्दशा, हीन अवस्था। ४ काममूता (कामेन मूर्च्छिता)= कामसे मूर्च्छित, काम से बेहोष। ५ रप्= भाषण करना। ६ सं पृच्=संबंध करना।

Yami says-(किं भ्राता असत्) Is he a brother (यत्) when [his sister] (अनाथं भवाति) becomes without lord? (किं उ स्वसा) Is she a sister (यत्) when (निर्ऋतिः निगच्छात्) destruction comes [to her brother]? (काममूता) Forced by my love (रपामि) I utter (एतत् बहु) these many words. (सं पिपृग्धि) Come near and hold (तन्वं) your body (मे तन्वा) with my body.

न वा उ ते तन्वा तन्वं सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्। अन्येन मत्प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥१२॥

पदानि— न । वै । ऊं इति । ते । तन्वा । तन्वं । सं । पपृच्यां । पापं । आहुः । यः । स्वसारं । निऽगच्छात् । अन्येन । मत् । प्रऽमुदः । कल्पयस्व । न । ते । भ्राता । सुऽभगे । वष्टि । एतत् ॥१२॥

अन्वयः— ते तन्वा तन्वं न वै उ सं पपृच्याम् । पापं आहुः यः स्वसारं निगच्छात् । मत् अन्येन प्रमुदः कल्पयस्व । हे सुभगे! ते भ्राता एतत् न वष्टि ॥१२॥

अर्थ—(यम कहता है-) (ते तन्वा) तेरे शरीरके साथ (तन्वं) मेरे शरीर का (न वै उ सं पपृच्यां) संबंध कभी नहीं होगा। उसको (पापं आहुः) पाप कहते हैं (यः स्वसारं) जो बहिनके

पास (निगच्छात्) जाता है। अतः (मत् अन्येन) मुझसे भिन्न पुरुष के साथ (प्रमुदः कल्पयस्व) आनन्दभोग कर। हे (सुभगे) भाग्यवाली स्त्री! (ते भ्राता) तेरा भाई (एतत् न वष्टि) यह नहीं चाहता।

भावार्थ— (यम कहता है–) हे यमी! हे बहिन! तेरे शरीर के साथ मेरे शरीर का स्पर्श कभी नहीं होगा। बहिन के साथ ऐसा कुव्यवहार करना पाप है। मैं यह पाप कभी नहीं करूंगा। इसलिये मुझसे भिन्न किसी अन्य पुरुष के साथ आनन्द कर। तेरा भाई ऐसा पाप करना नहीं चाहता।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१ प्रमुदः= आनन्द, उपभोग, मौज। २ कल्प्= समर्थ होना, करना, प्राप्त करना। ३ वश् = इच्छा करना।

Yama answers- (वै उ) Verily, (न संपपृच्यां) I will not mingle my (तन्वं) body (ते तन्वा) with thy body; (आहुः) they call him (पापं) sinful, (यः) who (निगच्छात्) should approach (स्वसारं) his sister. (कल्पयस्व) Enjoy (प्रमुदः) thy pleasures (मत् अन्येन) with another and not with me. (ते भ्राता) Thy brother (न वष्टि) seeks not (एतत्) this, O (सुभगे) fortunate one!

ब॒तो ब॑तासि यम॒ नैव ते॒ मनो॒ हृद॑यं चाविदाम।
अ॒न्या किल॒ त्वां क॒क्ष्ये॑व यु॒क्तं परि॑ ष्वजाते॒
लिबु॑जेव वृ॒क्षम् ॥१३॥

पदानि—बतः । बत । असि । यम । न । एव । ते । मनः । हृदयं । च । अविदाम । अन्या । किल । त्वां । कक्ष्याऽइव । युक्तं । परि । स्वजाते । लिबुंजाऽइव । वृक्षं ॥१३

अन्वयः— हे यम ! बतःऽसि बत । ते मनः हृदयं च न एव अविदाम । अन्या किल त्वां, कक्ष्या इव युक्तं, लिबुजा इव वृक्षं, परिष्वजाते ॥१३॥

अर्थ—(यमी कहती है) हे यम ! तू (बतः) दुर्बल (असि) है, यह (बत) सत्य है । (ते मनः) तेरा मन और (हृदयं च) हृदय (न एव अविदाम) हम नहीं जानते । (किल) निःसंदेह (अन्या) दूसरी स्त्री (त्वां) तुझे (कक्ष्या युक्तं इव) रस्सी जैसी घोडेके साथ, अथवा (लिबुजा वृक्षं इव) वल्ली जैसी वृक्षके साथ लिपट जाती है, वैसी (परिष्वजाते) आलिंगन देगी ।

भावार्थ— (यमी कहती है) यम ! तेरे मन और हृदय का पता मुझे इस समय तक लगा नहीं । निःसंदेह तू अत्यन्त दुर्बल है । दूसरी स्त्री के साथ ही तेरा मन लगा है, इसलिए मेरा तू धिक्कार करता है ।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ ।

१ बत = दुर्बल, असमर्थ, खेद । २ विद् = जानना । ३ कक्ष्या = घोडा बांधने की रस्सी जिससे घोडा रथ से बांधा जाता है । ४ लिबुजा = लता, वेल । ५ परिष्वज् = आलिंगन देना ।

Yami says– (बत) Alas ! (बतः असि) Thou art indeed a weakling, O Yama ! Surely (न अविदाम) we did not know (ते मनः हृदयं च) thy mind nor thy heart. (अन्या

किल) Verily another woman (त्वां परिष्वजातै) shall embrace thee, (इव कक्ष्या) as a girth (युक्तं) harnessed [horse] and (लिबुजा इव) as a twining plant (वृक्षं) a tree.

अन्यमू षु त्वं यम्यन्य उ त्वां परिं ष्वजाते लिबुजेव वृक्षं । तस्यं वा त्वं मनं इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं सुभंद्राम् ॥१४॥

पदानि-- अन्यं । ऊं इतिं । सु । त्वं । यमि । अन्यः । ऊं इतिं । त्वां । परिं । स्वजाते । लिबुंजाऽइव । वृक्षं । तस्यं । वा । त्वं । मनंः । इच्छ । सः । वा । तवं । अधं । कृणुष्व । संऽविदं । सुभंद्रां ॥१४॥

अन्वयः--हे यमि ! त्वं अन्यं उ, अन्यः उ त्वां सुपरिष्वजाते, लिबुजा वृक्षं इव। तस्य वा मनः त्वं इच्छ । स वा तव । अध सुभद्रां संविदं कृणुष्व ॥१४॥

अर्थ—(यम कहता है) हे यमि! (त्वं अन्यं उ) तू दूसरे को तथा (अन्यः उ त्वां) दूसरा पुरुष तुझे (सु परिष्वजाते) उत्तम प्रकार आलिंगन देवे, जैसी (लिवुजा वृक्षं इव) वेल वृक्ष से लिपटती है। (तस्य वा मनः) उसका मन (त्वं इच्छ) जानने की इच्छा तू कर और (सः वा तव) वह तेरे मन को जानने का यत्न करेगा। (अध) और (सुभद्रां संविदं) कल्याणयुक्त सुख का अनुभव (कृणुष्व) कर।

भावार्थ— (यम कहता है) हे यमि! तू दूसरे पुरुषको आलिंगन दे और दूसरा पुरुष तुझे आलिंगन देगा। उसका मन तू जान और वह तेरा मन जानेगा। आप दोनों परस्पर के अनुकूल रहकर आनन्द प्राप्त करो।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१ अध = (अथ) = नंतर, पश्चात्, आगे, इतना होनेके बाद। २ संविदं = अनुभव, सुखानुभव। ३ सुभद्रा = उत्तम, कल्याणमय।

Yama answers– Embrace (त्वं अन्यं उ) another, Yami! (अन्यः उ त्वां) and let another (सु परिष्वजाते) embrace you (लिबुजा वृक्षं इव) as a creeper rings the tree. (त्वं इच्छ) Win thou (तस्य वा मनः) his mind (सः वा तव) and let him win thine (अध) and (कृणुष्व) make (सुभद्रां संविदं) very excellent concord.

यही सूक्त अथर्ववेद में है, वहां जो पाठभेद हैं, वे यहां अब दिये जाते हैं—

(अथर्व० का० १८ सू० १)

(ऋ० मं० ४) ऋतं वदन्तो अनृतं रपेम। ... सा नौ नाभिः० ॥४॥

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्। आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ॥६॥

यह मंत्र अथर्ववेद में अधिक है—

(ऋ० मं० १२) न ते नाथं यम्यत्राहमस्मि न ते तनूं तन्वा३ सं पपृच्याम् ॥१३॥

(ऋ० मं० १२) असं॑यदे॒तन्मन॑सो हृ॒दो मे॒ भ्राता॒ स्वसु॒ः शय॑ने॒ यच्छ॒येय॑ ॥१४॥

ऋग्वेद में मंत्रसंख्या १४ है और अथर्ववेद में उक्त प्रकार मंत्रसंख्या १६ है। उक्त मंत्रों का अर्थ ऐसा होता है–

अन्वयः— अद्य ऋतस्य धुरि कः शिमीवतः भामिनः दुर्हृणायून्, आसन्निषून्, हृत्स्वसः, मयोभून् गाः युंक्ते? यः एषां भृत्यां ऋणधात् स जीवात्।

अर्थ— (अद्य) आजहि (ऋतस्य धुरि) सत्य के अग्रभाग में (कः) कौन भला (शिमीवतः) कर्म की प्रेरणा करनेंवाली, (भामिनः) तेजस्विनी, (दुः-हृणायून्) क्रोधरहित, (आसन्- इषून्) मौखिक बाणस्वरूप, (हृत्स्वसः) हृदय से चलाई हुई (मयोभून्) सुखदायक (गाः) वाणी के शब्दों को (युंक्ते) प्रयुक्त करता है? (यः एषां भृत्यां) जो इन शब्दों का पोषण (ऋणधात्) करता है, संवर्धन करता है, (सः जीवात्) वही दीर्घ काल जीवित रहता है।

भावार्थ— आज सत्य के लिये ही अपनी वाणीको कौन अर्पण करता है? तथा सत्कर्मों का प्रवर्तन हो, तेजस्विता बढे, क्रोधद्वेषादि भाव कम हों, निश्चित शुभ उद्देश्य से ही ये शब्दरूपी बाण फेंके जांय, जो शब्द बोले जांय, वे हृदय से बोले जांय और सुख बढने के लिये हि बोले जांय, इतनें नियमों का पालन करके सत्यकी पालना के लिये ही कौन बोलता है? जो इतना सत्य पालन करेगा, वही दीर्घ जीवन प्राप्त करेगा और यशस्वी होगा।

यह यम का कहना है। यमी ५ वें मंत्र में कहती है कि, "ईश्वरने हम दोनों–यमयमीको– एक समय गर्भ में रखकर भाईबहिन नहीं बनाया, अपितु पतिपत्नी बनाया है, ईश्वरने गर्भ में हमारा विवाह किया है। उसने जो यह किया, उसको तोड देना हमें योग्य नहीं।" इस यमी के वाक्य के उपरान्त अथर्ववेद के सूक्त में यह मंत्र यम का उत्तर है। इस में यम ने सामान्य रूप

से सत्य भाषण करने का माहात्म्य वर्णन किया है। व्यर्थ बोलना योग्य नहीं, सत्य, शुभ और हितकारक हि बोलना चाहिए। एक गर्भ में जो जीव होते हैं, वे बहिन अथवा भाई होते हैं, उस विषय में कुकल्पना करके उनकोहि 'परमेश्वरने पतिपत्नी बनाया' करके कहना अयोग्य है। यह वाणी का दुरुपयोग है। ऐसा कहकर यम यमी के भाषण का निषेध करता है।

आगे '**को अस्य वेद०**' इत्यादि ऋग्वेद का ६ ठाँ मंत्र अथर्ववेद में ७वाँ होता है। वह भी यम का ही भाषण है। यम पूछता है कि 'यह गर्भ की बातें किसने देखी और किसने कही' इ०।

अथर्ववेद का '**को अद्य युंक्ते०**' (अ० १८।१।६) यह मंत्र ऋग्वेद १।८४।१६, सामवेद ३४१, तै०सं० ४।२।११, मै० सं० ३।१६।४ इतने स्थानों में आता है। सामवेद में इसका पाठभेद—

'**आसन्नेषामप्सुवाहो मयोभून्**' ऐसा है।

अथर्ववेद के १३ और १४ वें मंत्रों में दो आधे मंत्र अधिक हैं—

न ते नाथं यम्यत्राहमस्मि न ते तनूं तन्वा संपपृच्याम्।

"(ते नाथं) तेरा नाथ (अत्र) यहां, हे यमी! (अहं न अस्मि) मैं नहीं हूं। अतः (ते तनूं तन्वा न सं पपृच्यां) तेरे शरीरको अपने शरीर से मैं स्पर्श कदापि नहीं करूंगा।" ऐसा यम कहता है, वह योग्य है, तथा और—

असंयदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता स्वसुः शयने यच्छयीय।

"(यत् भ्राता) जो भाई अपनी (स्वसुः शयने शयीय) बहिन के शयन में सो जाय, यह (मे मनसः हृदः च) मेरे मन और हृदय के (असंयत्) बिलकुल विरुद्ध है।" इस में भी यम के मनोभाव अच्छे व्यक्त हुए हैं।

अथर्ववेद में जो भी मन्त्र अधिक हैं, वे यम के मनोगत अधिक स्पष्टतासे व्यक्त करने के लिये आये हैं। अस्तु। यह सूक्त भाईबहिनके विवाह का

निषेध करने के लिये है । इस सूक्त में ही ये यम और यमी एक गर्भ में जन्मे सहोदर भाई होने की बात स्पष्ट कही है ।

१ देवः नौ गर्भे दंपती कः = (ईश्वरने हम दोनों को गर्भमेंहि पतिपत्नी बनाया है । मं० ५)

२ दिवा पृथिव्या मिथुना सबंधू = (द्युलोक और पृथ्वी ये पति-पत्नी होते हुए भाईबहिन हैं । मं० ९) इस मन्त्रका ध्वनि यमयमी ये भाईबहन होते हुए भी पतिपत्नी हों ऐसाही है । यह यमीका कहना है। परन्तु इसमें (यमी यमस्य अजामि बिभृयात्) = यमी के साथ बन्धुत्वहीन सम्बन्ध करे। ऐसा कहकर वे भाईबहन होने की बात सूचित की है ।

३ दसवें मन्त्रमें भविष्यकालमें ऐसे अधोगति का समय आवेगा, जहां भाईबहिन भी (जामयः अजामि कृण्वन्) पतिपत्नी के नाते से व्यवहार करेंगे, ऐसा कहकर भाईबहिन के विवाह का निषेध किया है ।

४ ग्यारहवें मन्त्र में (भ्राता, स्वसा) भाईबहिन का स्पष्ट उल्लेख है ।

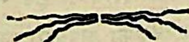
५ बारहवें मन्त्रमें (पापं आहुः यः स्वसारं निगच्छात्) बहिन के पास जाना पाप है, ऐसा कहकर यमी यम की बहिन होती है, ऐसा स्पष्ट कहा है। तथा इसी मंत्रमें (ते भ्राता न एतत् वष्टि) तेरा भाई यह नहीं चाहता, ऐसा कहकर भाई का नाता स्पष्ट कह दिया है।

६ अथर्ववेद के मंत्र में (भ्राता स्वसुः शयने शयीय, मे मनसः असंयत्) = भाई बहिन के शयन में सोवे, यह मेरे मन के विरुद्ध है, ऐसा कहकर यम और यमी भाईबहिन हैं, यह स्पष्ट दर्शाया है ।

इससे यमी की इच्छा यम के साथ विवाह करने की थी और यम ज्ञानी होनेके कारण अपनी बहिन के मनोगत का निषेध करता है और अन्तमें दोनों का समझौता होकर यम दूसरी स्त्रीसे और यमी दूसरे पुरुष से विवाह करे, ऐसा निर्णय भी हुआ है। अर्थात् इस सूक्तने भाईबहिन के विवाह का पूर्ण रूपसे निषेध किया है। इससे सगोत्र विवाह का भी निषेध समझा जा सकता है।

मन्त्रस्थ पदोंका अर्थ।

१ **गाः**- गौ, वाणी, शब्द। २ **शिमीवान्**- कर्मयुक्त, सत्कर्म की प्रेरणा करनेवाले। ३ **भामिन्**- प्रकाशमय, तेजस्वी। ४ **दुःह्वणायुः**- क्रोधादि विकाररहित, जिसमें दुष्ट विकार नहीं होते। ५ **आसन्निषुः** = (आसन्-इषुः)- मुख के बाण, शब्द अथवा वाणी यह मुखरूपी धनुष्य से चलनेवाले बाणों के समान हैं। बाण जैसा ठीक निशानेपर लक्ष्यवेध करके छोडना चाहिये, उसी तरह शब्द भी ठीक उद्देश्य से ही बोलने चाहिये। ६ **हृत्स्वसः** (हृत्सु-असः)- हृदय से फेंके हुए, हृदयके बलके साथ बोले हुए शब्द। ७ **मयोभू**- सुख की उत्पत्ति करनेवाले शब्द हो। ८ **भृत्या**- भरण, पोषण, संवर्धन। ९ **ऋणधात्**- (ऋण्) बढाना, संवर्धन करना।



वेदके विषयमें
ध्यानमें रखने योग्य ज्ञान।

वेद।

वेद के विषय में कुछ सत्य ज्ञान प्राप्त करने के समय सबसे प्रथम 'वेद एक है' अथवा 'वेद चार हैं,' किंवा 'वेद अनंत हैं' इस विषय का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक है। इस समय सर्वसाधारण जनता में वेदके विषयमें बडा ही अज्ञान फैला है, इतना ही नहीं, प्रत्युत जो लोग सनातन वैदिक धर्म के पूर्ण अभिमानी समझे जाते हैं, उनमें भी वेद के विषय में अशुद्ध विचार सुदृढ हुए हैं। कई मानते हैं कि, 'वेद चार हैं' और वे परस्परविभिन्न हैं, उनका कोई परस्परसंबंध नहीं है, जिस वेद का जो अनुयायी होगा, वह उसका अध्ययन करे, उसको दूसरे वेद का दर्शन करने की भी आवश्यकता नहीं है। कई धार्मिक लोगोंका ऐसा ख्याल है।

कई दूसरे लोग मानते हैं, कि चार वेद तो मुख्य हैं, पर उनकी शाखाएँ परस्परविभिन्न हैं। शाखासंहिताओं का अध्ययन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस तरह विलक्षण मत प्रचलित हुए हैं। इस कारण अखिल वेदका अध्ययन करनेकी परिपाठी टूट गयी, इससे वैदिक धर्म की बडी भारी हानि हुई है। ऋग्वेदका अध्ययन महाराष्ट्र में इस समय में है, परन्तु पचास वर्ष पूर्व जितना था, उसका सौवां भाग भी इस समय नहीं है। अथर्ववेद का अध्ययन तो प्राय: लुप्त ही हो गया है। कुछ दोचार पंडित काशी में तथा अयोध्या में हैं। सामवेद का अध्ययन भी प्रायः

लुप्त ही हुआ है, गुजरात, मैसूर तथा उनके आसपास के प्रदेश में, तथा काशी में थोडासा अध्ययन है। शाखासंहिताओं में से दक्षिण देशमें केवल तैत्तिरीय संहिताका अध्ययन है, माध्यंदिन, काण्व आदि शाखाओंके विद्वान् क्वचित् नासिकके पास हैं। शेष शाखाओंका अध्ययन प्रायः लुप्त ही हुआ है।

इतना अध्ययनलोप हुआ है, तो भी वेदधर्मियों को इस विषयमें कोई खेद नहीं होता है और इसके अध्ययन के लिये कोई किसी जगह प्रयत्न भी नहीं हो रहा है। इतना ही नहीं, परन्तु इन उपलब्ध शाखाओं के ग्रन्थ शुद्ध मुद्रित अवस्थामें मिलने चाहियें, इतनी भी इच्छा किसी जगह नहीं दीखती है!! किसी भी अन्यधर्मके धर्मग्रन्थके विषयमें इतनी उदासीनता नहीं है, जितनी वेदधर्म के ग्रन्थोंके विषयमें इस समय दीख रही है।

वस्तुतः देखा जाय, तो इस समय वेदधर्म के यशके लिये कट मरनेके लिये लाखों लोग तैयार होंगे, वेदको बुरा शब्द कहा जाय, तो सहन करनेके लिये कोई तैयार नहीं होगा, वेदके यश की रक्षा करनेके लियें लाखों रु० का व्यय करनेके लिये लोग तत्पर रहेंगे, परन्तु वेदोंको परिशुद्ध अवस्थामें मुद्रित करनेके लिये, उसके सत्य अर्थ की खोज करने के लिये, उस कार्य के लिये अत्यंत आवश्यक साधन निर्माण करनेके लिये किसी प्रकार कोई व्यय नहीं करेंगे!! और न कोई इसका प्रयत्न करेंगे! ऐसी विचित्र अवस्था इस समय हुई है।

प्राचीन परिपाठी के अनुसार देखा जाय, तो यह कार्य घरानोंके सुपुर्द किया गया था, ऐसा प्रतीत होता है। 'वेदी' इस नामके कई ब्राह्मणों के घराने हैं। ये घराने अति प्राचीन होंगे, इसमें संदेह नहीं है। जिस समय एकही 'वेद' था, एक वेदके चार वेद बने नहीं थे, उस समय उस एक वेदका आमूलाग्र अध्ययन करने का भार अपने सिर पर लेनेवाले ये 'वेदी' घरानेके लोग हैं। 'वेदी' का अर्थ 'वेद जिनके पास है, वेदका अध्ययन जो करते हैं।'

वेदके धर्म के लिये कितना घोर, भयानक समय आ गया है देखिये। जैन, बौद्ध, खिस्ती और मुसलमानी इन धर्मों की ओर आप देखेंगे, तो उनमें समग्र मूल धर्मग्रन्थका अध्ययन किये विद्वान् आपको कई मिलेंगे। केवल 'वेद' का ही एक ऐसा धर्म इस समय इस भूमण्डलपर है कि, जिसके मूल धर्मग्रन्थ 'पवित्र वेद' का आमूलाग्र अध्ययन किया हुआ विद्वान् एक भी नहीं है ! और आमूलाग्र अध्ययन करने की इच्छा भी नहीं है ! अन्य धर्मके मूल ग्रन्थके अनुवाद–प्रामाणिक अनुवाद–अनेक हो चुके हैं, पर वेदका प्रामाणिक अनुवाद अब तक नहीं हुआ, इतनाही नहीं, प्रस्तुत चारों वेद अतिशुद्ध छापे भी कहीं नहीं हैं !! और यदि इस विषय में किसीने यत्न किया, तो वही बुरा समझा जाता है ! कई सनातन धर्म के वैदिक तो वेदका मुद्रण करना भी पाप समझते हैं, यहां तक अज्ञान फैला हुआ है ! ये लोक वेदका कण्ठ करनाही पुण्यकारक मानते हैं, मुद्रण करना और अनुवाद करके प्रकाशित करना अनवश्यक मानते हैं। इतनी अपने पूज्य धर्मग्रन्थ के विषय में किसी दूसरे लोगोंकी उदासीनता नहीं है।

वेदका अर्थज्ञान।

वेदका अर्थज्ञान प्राप्त करना चाहिये, यह अतिप्राचीन कालसे विद्वान् लोग मानते आये हैं। स्वयं निरुक्तकारने ही कहा है कि—

योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते । नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ॥

(निरुक्त० १।१७)

"जो वेदका अर्थ जानता है, उसे सकल कल्याण प्राप्त होता है, वह ज्ञानसे पवित्र होता हुआ, स्वर्गधाम को प्राप्त करता है।" निरुक्तकार यास्काचार्य के पूर्व भी शाकपूणी, गर्ग, और्णनाभ आदि कई निरुक्तकार वेद का अर्थ करने का कार्य करते रहे। श्री सायणाचार्य के पूर्व भी कई भाष्यकार हुए थे। संवत् की १४ वी शताब्दिमें सायणाचार्य हुए, उवटा-

चार्य का समय ११ वी शताब्दि माना जाता है, महीधराचार्य का समय सायणमाधव के पश्चात् का है। ये प्राचीन लोग वेद का अर्थ करना आवश्यक मानते थे।

प्रजापति कश्यपने सर्वप्रथम वेदका अर्थ जाननेके लिये शब्दकोश निर्माण किया, जिसका नाम 'निघण्टु' है। इसीपर श्रीयास्काचार्यने जो भाष्य किया, वही निरुक्त है, जो आजकल मिलता है, अन्य निरुक्त प्रायः लुप्त हो चुके हैं। प्रजापति--कश्यपका काल बहुत ही प्राचीन माना जाता है। कश्यपका आश्रम भारतवर्ष के बाहर था। कई मानते हैं कि जिस कश्यप ऋषिके नामसे पृथ्वीका बोध होता है और 'काश्यपी पृथ्वी' कहा जाता है, वह ऋषि कास्पीयन समुद्र के पास रहता था। क्योंकि उनसे सम्बन्ध रखनेवाले दानव आदि देश वहीं हैं। प्रथम निरुक्तकार कश्यप यही था, यह हमारा आग्रह नहीं है। परन्तु वह बडा प्राचीन है, इसमें सन्देह नहीं है।

इस कश्यप ऋषिसे सायण--महीधर--उवट आदि आचार्य तक जो विद्वान् हुए, वे वेदका अर्थ बतलाने का यत्न करते आये हैं, फिर पचास वर्ष पूर्व हुए श्री स्वा० दयानन्द सरस्वतीजीने वेद का ज्ञान फैलाने के लिये जो प्रयत्न किया, वह निःसन्देह माननीय है, परन्तु वह आधुनिक है। इनके सिवाय इस समय श्री बाबु अरविंद घोष राजयोगीजीने अंग्रेजी में विशेष रहस्योद्घाटन करने का बडा प्रशंसनीय कार्य किया है। आजकल भी इनके अतिरिक्त अनेक अनुवाद अनेक भाषाओंमें वेदपर हुए हैं। अर्थात् वेदका अर्थ जनता तक पहुंचानेके लिये हर समय प्रयत्न होता आया है।

श्रीमद्वेदव्यासजीने जो महाभारत की रचना की, वह भी वेदका अर्थ कथा के रूपसे दर्शाने के लिये की थी, इस विषयमें श्रीमद्भागवतमें निम्न लिखित प्रमाण मिलता है—

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा ।
कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह ॥
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम् ॥२५॥
भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः ॥(श्रीभागवत १-४)

कहा जाता है कि, श्रीमद्व्यासदेवजीने पुराण और उपपुराण रचे और वेदका तात्पर्य दर्शानेके मुख्य उद्देशसे महाभारत की रचना उन्होंने की। महाभारत पढकर समझ लिया, तो पाठकों को वेद का तात्पर्य ठीक प्रकार समझ में आ सकता है, ऐसी व्यवस्था महाभारतमें है ।

अस्तु । यह कहांतक सत्य है, यह एक खोज करनेकी बात है। परन्तु इससे निःसन्देह यह कहा जा सकता है, कि गत पांच सहस्र वर्षोंसे अनेक विद्वान् वेदका अर्थ करते और दर्शाते आये हैं। इस समयमें भी यहां के आर्यावर्त के लोग ही नहीं, प्रत्युत यूरोप, अमेरिका के विद्वान् वेदों का अर्थ करने के यत्न में हैं और जितना परिश्रम इन यूरोपीय विद्वानोंने किया है, उससे सौवा भाग भी भारतीय विद्वान् अबतक कर नहीं सके हैं। सचमुच भारतीय विद्वानों के लिये यह लज्जा का विषय है, परन्तु इस समय कई संस्थाएं वेद की खोज करने के लिये भारतवर्षमें स्थापित की गई हैं और वहां स्थायी रूपसे वेद की खोज का कार्य चल रहा है, यह एक आनन्द की बात है ।

मन्त्रशक्ति ।

वेद के मंत्रों में मंत्रशक्ति है, ऐसा कई लोग कहते हैं। अर्थात् मंत्र का जाप विशिष्ट संख्यामें होनेसे जपकर्ता को वह शक्ति प्राप्त होती है, ऐसा इन लोगों का ख्याल है। इसी आशय को लेकर वेदानुयायी ग्रंथों में कई मन्त्रों का जाप करने की बडी लम्बीचौडी विधि भी लिखी है । तथा वेद के छन्दऋषिदेवता लिखनेवालों ने कई स्थानपर यह सूक्त या मंत्र

सर्पविष दूर करनेवाला है, यह वृश्चिक-विषका शमन करता है, यह कामिला रोग को दूर करता है, यह ज्वरघ्न है, यह वातरोग का नाशक है, ऐसा अनेकों सूक्तोंपर लिखा है। आजकल के कई लोंग इस कों एकदम असत्य कहते हैं। प्राचीन धर्माभिमानी लोग कहते हैं कि, मंत्र में शक्ति है, परन्तु हमें वह प्राप्त नहीं होती, क्योंकि हम कमजोर हैं।

ये दोनों मत अविचार की बुनियाद पर आरूढ हुए हैं। वस्तुतः इस विषय का अनुष्ठानपूर्वक अनुभव लेना चाहिए और जो बात अनुभवसें आ जायगी, उतनीहि बोलनी चाहिये। इस विषय का अनुष्ठान करनेवाले लोग स्वाध्यायमण्डलके अन्दर हैं और इनके अनुभव को हम यथाशास्त्र लिखकर रखने का कार्य कर रहे हैं। इसका पर्याप्त अनुभव आनेतक हम इस विषय पर बहुत लिखना नहीं चाहते। परन्तु कई वर्षोंके कईयोंपर लिये अनुभव से हम इतना कह सकते हैं कि, मंत्रों में जपसे उत्पन्न होनेवाली कुछ शक्ति अवश्य है। हमारे पास इस समय इसका अनुभव लेनेवाले केवल ५-६ साधक हैं। यदि इसकी खोज करनेवाले अनुभव लेनेके इच्छुक और अधिक बाहर रहकर अनुष्ठान करनेवाले मिल जांयगे, तो बडा कार्य हों सकता है। यहां हम इतनाही इस समय कह सकते हैं कि, इस विषय की जो खोज यहां हम कर रहे हैं। जब कुछ विशेष अनुभव आ जायगा, तब हम अवश्य उसका प्रकाश कर देंगे।

तथापि हम जपसिद्धि के विषय में इस समय बहुत बल देना नहीं चाहते। यदि एक ही सिद्धि प्राप्त हुई, तो अन्य सिद्धियां भी प्राप्त हो सकतीं हैं। इस समय हम जो बल देना चाहते हैं, वह वेद के अर्थ-विषयक खोजपर है। यदि यह सहज होनेवाली बात भी हम सिद्ध कर सकेंगे, तब तो आगेके अन्य कार्य शनैः शनैः होते रहेंगे। वेदोंका सत्य अर्थ वेदान्तर्गत प्रमाणों से बतानेके साधनग्रन्थ निर्माण करना, यह सबसे



प्रथम करने का हमारा कार्य है। क्योंकि हमारे धर्म का मूल वेद है, अतः धर्म जानने के लिये वेदका अर्थ जानना अत्यंत हि आवश्यक है—

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। (मनु० २।६)

'अखिल वेद धर्म का मूल है।' अतः यह धर्मका मूल धार्मिकों को जानना अत्यंत आवश्यक है। इसके विना कार्य नहीं चल सकता। सत्य धर्म को जानने के लिये इसी कारण प्रयत्न होने चाहिये। आजकल तो नये ढंगसे वेदका अध्ययन नहीं हो रहा है और प्राचीन ढंग तो कई वर्ष पूर्वहि छूट गया है! इससे आजकल ऐसी अवस्था आ चुकी है, कि मूल वेदका ज्ञान किसी को नहीं है और वेदका स्मृतियों से कैसा संबंध है, इसका भी ज्ञान किसी को नहीं है। परन्तु न जानते हुए हर एक मनुष्य वेदके विषय में कुछ न कुछ बोलताही रहता है।

वेद एक है, या चार?

इस समय विचारणीय प्रश्न यह है कि वेद एक है वा चार हैं? वेदत्रयी भी कहते हैं, तो क्या वेद तीनही हैं? ये प्रश्न यौंही टालनेवाले नहीं हैं। महाभारत में कहा है—

विव्यास वेदान् यस्मात् स तस्माद्व्यास इति स्मृतः॥

(महाभारत आ० ६४।१३०)

"जिस कारण एक वेद को व्यस्त किया, उस कारण कृष्णद्वैपायन को व्यास कहने लगे।" यहां व्यासने एक वेदको व्यस्त किया, यह बात मानी गई है। पहले वेद एक था, व्यस्त करने के पश्चात् वेद अनेक हुए, यह इस कथन का तात्पर्य है। श्रीमद्भागवतमें भी विशेष स्पष्टताके साथ यही बात कही है—

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः।
देवो नारायणो नान्यः एकोऽग्निर्वर्ण एव च॥ (श्रीभागवत ९।१५)

"प्राचीन समयमें वेद एकही था, देव भी एकही माना जाता था और अग्नि भी एक ही था, तथा वर्ण भी एकही था।" प्राचीन समय में वेद एक था, उसको कृष्णद्वैपायन व्यास ने व्यस्त किया, और एकके चार वेद बनाये। ऐसा करने का कारण भी लिखा है- पहिले मनुष्य बुद्धिमान् थे, बहुत ब्रह्मचर्य पालन करके विद्याभ्यास करते थे, इसलिये साग्र वेद का अध्ययन वे कर सकते थे। परन्तु कलियुग में लोगोंकी आयु, शक्ति, मेधा और बुद्धि घट गई, इसलिये अध्ययन साग्र होने की संभावना नहीं रही, इसलिये दयालु व्यासदेवने अध्ययन करने की सुगमता के लिये वेदों के विभाग किये।

यज्ञ में हौत्र, आध्वर्यव, औद्गात्र और ब्राह्म नामक चार कर्म होते थे और उन कर्मों में कुछ विशिष्ट मन्त्रों का प्रयोग किया जाता था। हौत्र के मन्त्र इकट्ठे किये, उनका नाम 'ऋग्वेद' रखा, आध्वर्यव के मंत्रों के संग्रह का नाम 'यजुर्वेद' हुआ, औद्गात्रके मन्त्रसंग्रह को 'सामवेद' कहने लगे और ब्राह्म मन्त्रसंग्रह 'अथर्ववेद' नामसे प्रसिद्ध हुआ।

आजकल इन संहिताओं में भी हम देखते हैं कि सामवेद मंत्र ७५ मंत्रों के सिवाय शेष सब मंत्र ऋग्वेदसे मिलते हैं। यजुर्वेदमें ८०० मंत्र ऋग्वेद के हैं और अथर्ववेद में २००० मंत्र ऋग्वेद के हैं। इससे भी पत्ता लगता है कि, मूल एक ही वेद होगा, जिससे चार वेद अध्ययन के सौकर्य के लिये किये गये होंगे। प्रारम्भ से ही चार वेद होते, तो इतने मंत्र पुनः पुनः आने की आवश्यकता न होती। आजकल की वेदमंत्रोंकी व्यवस्था यज्ञपद्धति के ही अनुसार की गयी है। परन्तु वेद का एकमात्र उद्देश्य यज्ञ ही है, यह मंत्र के अर्थसे सिद्ध नहीं हो सकता। इसीलिये हम कह सकते हैं कि, वेद तो विशेष ज्ञान देनेके लिये प्रवृत्त हुए थे। उन सबका एकदम अध्ययन होना, उन लोगों के लिए कठिन हुआ, इसलिये वेदव्यास के समय जिस यज्ञपद्धति के अनुसार वेद-पाठ होता था, उस

पद्धति के अनुसार वेदों के चार पुस्तक वेद-व्यासने संपादित किये। अर्थात् इस संग्रह पर याज्ञिक पद्धति की अधिक छाया है। इसलिए यह 'यज्ञपद्धति-मन्त्रसंग्रह' है, ऐसा हम कह सकते हैं।

आज यदि कोई वेद का अध्ययन निष्पक्ष होकर करने लगे, तो उसको उसी समय पता लगेगा कि, जिस यज्ञकर्म में इन मंत्रों का उपयोग होता है, उस यज्ञकर्म का मंत्रों के अर्थ के साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं है। अर्थात् मंत्र यज्ञकर्म में अर्थ की अनुकूलता से नहीं लगाये गये, प्रत्युत उस समय की परिपाठी से लगाये गये हैं। इतना ही नहीं, प्रत्युत कई स्थानों में अर्थ का बिलकुल ध्यान न करते हुए ही यज्ञकर्म में मंत्रोंका प्रयोग हुआ है। इसलिए सबसे प्रथम बडी खोज करके अंतर्गत प्रमाणों से वेद का सरल अर्थ निश्चित करना चाहिये और याज्ञिक पद्धति का विचार करना हो, तो वेदमंत्रों को अलग रीतिसे पुनः संग्रहित करना चाहिये। अर्थात् जो यज्ञ वेदमंत्रों के अर्थ से सिद्ध होंगे, उतने यज्ञ तो मानने ही चाहिये, परंतु ज़ो वेदमंत्र अर्थ से यज्ञ का प्रतिपादन नहीं करते, उनका विचार अलग करना चाहिए।

आजकल जो मंत्रसंग्रह की व्यवस्था है, वह अर्थ की दृष्टि से नहीं है। अर्थात् सूक्तों का पूर्वापर संबंध कोई नहीं है। इसका उदाहरण देखिये—

ऋग्वेद प्रथम मण्डल।

सूक्त	ऋषि	देवता	मन्त्रसंख्या
१	मधुच्छन्दाः	अग्निः	९
२	”	वायुः	३
		इंद्रवायू	३
		मित्रावरुणौ	३
३	”	अश्विनौ	३

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्रसंख्या
		इन्द्रः	३
		विश्वे देवाः	३
		सरस्वती	३
४	मधुच्छन्दा	इंद्रः	१०
५	,,	,,	१०
६	,,	,,	
		मरुतः	१०
७	,,	इन्द्रः	१०
८	,,	,,	१०
९	,,	,,	१०
१०	,,	,,	१२
११	,,	,,	८
१२	मेधातिथिः	अग्निः	१२
१३	,,	,,	१२
१४	,,	विश्वे देवाः	१२
१५	,,	ऋतवः	१२
१६	,,	इन्द्रः	९
१७	,,	मित्रावरुणौ	९
१८	,,	ब्रह्मणस्पत्यादयः	९
१९	,,	अग्नामरुतौ	९
२०	,,	ऋभवः	८
२१	,,	इन्द्राग्नी	६
२२	,,	अश्विनौ आदयः	२१

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्रसंख्या
२३	मेधातिथिः	वायवादयः	२४
२४	शुनः शेपः	अग्न्यादयः	१५
२५	,,	वरुणः	२१
२६	,,	अग्निः	१०
२७	,,	,,	१३
२८	,,	इन्द्रादयः	९
२९	,,	इन्द्रः	७
३०	,,	इन्द्रादयः	२२
३१	हिरण्यस्तूपः	अग्निः	१८
३२	,,	इन्द्रः	१५
३३	,,	,,	१५
३४	,,	,,	१२
३५	,,	अग्न्यादयः	११
३६	काण्वः	अग्निः	२०
३७	,,	मरुतः	१५
३८	,,	,,	१५
३९	,,	,,	१०
४०	,,	ब्रह्मणस्पतिः	८
४१	,,	वरुणादयः	९
४२	,,	पूषा	१०
४३	,,	रुद्रादयः	९
४४	प्रस्कण्वः	अग्निः	१४
४५	,,	,,	१०

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्रसंख्या
४६	प्रस्कण्व	अश्विनौ	१५
४७	,,	,,	१०
४८	,,	उषा	१६
४९	,,	,,	४
५०	,,	सूर्यः	१३
५१	सव्यः	इन्द्रः	१५
५२	,,	,,	१५
५३	,,	,,	११
५४	,,	,,	११
५५	,,	,,	८
५६	,,	,,	६
५७	,,	,,	६
५८	नोधा	अग्निः	९
५९	,,	,,	७
६०	,,	,,	५
६१	,,	इन्द्रः	१६
६२	,,	,,	१३
६३	,,	,,	९
६४	,,	मरुतः	१५
६५–७३	पराशरः	अग्निः (प्रत्येक सूक्त)	१०
७४	गोतमः	,,	९
७५–७८	,,	,, (प्रत्येक सूक्त)	५

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्रसंख्या
७९	गोतमः	अग्निः	१२
८०	,,	इन्द्रः	१६
८१	,,	,,	९
८२	,,	,,	६
८३	,,	,,	६
८४	,,	,,	२०
८५	,,	मरुतः	१२
८६	,,	,,	१०
८७	,,	,,	६
८८	,,	,,	६
८९	,,	विश्वे देवाः	१०
९०	,,	,,	९
९१	,,	सोमः	२३
९२	,,	उषादयः	१८
९३	,,	अग्नीषोमो	१२
९४	कुत्सः	अग्निः	१६
९५	,,	,,	११
९६	,,	,,	९
९७	,,	,,	८
९८	,,	,,	३
९९	कश्यपः	,,	१
१००	ऋज्राश्वादयः	इन्द्रः	१९

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्रसंख्या
१०१	कुत्सः	इंद्रः	११
१०२	,,	,,	११
१०३	,,	,,	८
१०४	,,	,,	९
१०५	त्रितः	विश्वे देवाः	१९
१०६	कुत्सः	,,	७
१०७	,,	,,	३
१०८	,,	इन्द्राग्नी	१३
१०९	,,	,,	८
११०	,,	ऋभवः	९
१११	,,	,,	५
११२	,,	अग्न्यादयः	२५
११३	,,	उषादयः	२०
११४	,,	रुद्रः	११
११५	,,	सूर्यः	६
११६	कक्षीवान्	अश्विनौ	२५
११७	,,	,,	२५
११८	,,	,,	११
११९	,,	,,	१०
१२०	,,	,,	१२
१२१	,,	विश्वे देवाः	१५
१२२	,,	,,	१५

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्रसंख्या
१२३	कक्षीवान्	उषा	१३
१२४	;;	;;	१३
१२५	;;	दानं	७
१२६	;;	;;	७
१२७	परुच्छेपः	अग्निः	११
१२८	;;	;;	८
१२९	;;	इन्द्रः	११
१३०	;;	;;	१०
१३१	;;	;;	७
१३२	;;	;;	६
१३३	;;	;;	७
१३४	;;	वायुः	६
१३५	;;	;; आदयः	९
१३६	;;	मित्रावरुणादयः	७
१३७	;;	;;	३
१३८	;;	पूषाः	४
१३९	;;	देवाः	११
१४०	दीर्घतमाः	अग्निः	१३
१४१	;;	;;	१३
१४२	;;	;;	१३
१४३	;;	;;	८
१४४	;;	;;	७
१४५	;;	;;	५

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्रसंख्या
१४६	दीर्घतमाः	अग्निः	५
१४७	;;	;;	५
१४८	;;	;;	५
१४९	;;	;;	५
१५०	;;	;;	३
१५१	;;	मित्रादयः	९
१५२	;;	;;	७
१५३	;;	;;	४
१५४	;;	विष्णुः	६
१५५	;;	;;	६
१५६	;;	;;	५
१५७	;;	अश्विनौ	६
१५८	;;	;;	६
१५९	;;	द्यावापृथिवी	५
१६०	;;	;;	५
१६१	;;	ऋभवः	१४
१६२	;;	अश्वः	२२
१६३	;;	;;	१३
१६४	;;	देवाः	५२
१६५	इन्द्रादयः	मरुत्वानिन्द्रः	१५
१६६	अगस्त्यः	मरुतः	१५
१६७	;;	;;	११
१६८	;;	;;	१०

सूक्त	ऋषि	देवता	मंत्रसंख्या
१६९	अगस्त्यः	इन्द्रः	८
१७०	;;	;;	५
१७१	;;	मरुतः	६
१७२	;;	;;	३
१७३	;;	इन्द्रः	१३
१७४	;;	;;	१०
१७५	;;	;;	६
१७६	;;	;;	६
१७७	;;	;;	५
१७८	;;	;;	५
१७९	;;	रतिः	६
१८०	;;	अश्विनौ	१०
१८१	;;	;;	९
१८२	;;	;;	८
१८३	;;	;;	६
१८४	;;	;;	६
१८५	;;	द्यावापृथिवी	११
१८६	;;	विश्वेदेवाः	११
१८७	;;	;;	११
१८८	;;	(आप्री)	११
१८९	;;	अग्निः	८
१९०	;;	बृहस्पतिः	८
१९१	;;	अप्तृणसूर्यः	१३

ये ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके सूक्त हैं। इनमें पाठक देखेंगे, तो उनको पता लग जायगा कि, किसी एक प्रकरणमें प्रथम बहुत मंत्रसंख्यावाले सूक्त रखे हैं और आगे क्रमशः कम मंत्रसंख्यावाले सूक्त रखे गये हैं। उदाहरण के लिये सूक्त १२ से २१; २४ से २९; ३१ से ३५; ५१ से ५७; ५८ से ६०; ६१ से ६३; ८० से ८३; ९४ से ९८; ११६ से ११९; १२९ से १३४; १४० से १५०; १७३ से १७८; १८० से १८४ ये सूक्त देखिये। इनमें क्रमशः मंत्रसंख्या कम हुई नजर आवेगी। एकही देवता में यह बात विशेष स्पष्ट होगी। एकही ऋषिके मन्त्रोंमें प्रथम अग्नि के मन्त्र रहते हैं, पश्चात् इन्द्र के तथा अन्यान्य देवताओं के रहते हैं। इनमें स्पष्टतया प्रथम बहु मन्त्रसंख्यावाले सूक्त आते हैं। पश्चात् अल्पसंख्या-वाले आते हैं। सर्वत्र ऋग्वेदमें यही मन्त्रसंख्यासे सूक्तक्रम रखा है। जहां इस क्रमके विरुद्ध कुछ सूक्त दिखाई देंगे, उन सूक्तोंमें अनेक देवता होंगे, विविध देवता होंगे, ऋषि बदले होंगे, या इसी प्रकार का कुछ अन्य कारण अवश्य होगा। इससे पता चलता है कि यह अर्थानुसंधान से सूक्त नहीं रखे हैं, परन्तु केवल मन्त्रसंख्या के अनुसंधान से ही रखे हैं।

अथर्ववेदमें भी पहिले सात काण्डोंमें इसी तरह सूक्तोंकी मन्त्रसंख्या से संग्रह किया गया है।

काण्ड	१	४	मन्त्रवाले	अधिक	सूक्त हैं।
,,	२	५	,,	,,	,,
,,	३	६	,,	,,	,,
,,	४	७	,,	,,	,,
,,	६	३	,,	,,	,,
,,	७	१ या २	मन्त्रवाले	अधिक	सूक्त हैं।
,,	८–९	२० से अधिक	,,	,,	,,
,,	१०	३० से ,,	,,	,,	,,

इस प्रकार काण्ड के काण्ड सूक्तमें मन्त्रसंख्या कितनी है, इस कारणसे हि इकट्ठे संग्रहित हुए हैं। इस कारण प्रत्येक काण्ड में औषधिसूक्त, जलसूक्त, अग्निसूक्त, चिकित्सासूक्त आदि इतस्ततः बिखरे दिखाई देते हैं।

ऋग्वेद के पहिले सात काण्ड ऋषिक्रमसे संग्रहित किये गये हैं—

मंडल		ऋषि	सूक्तसंख्या	मंत्रसंख्या
द्वितीय	,,	गृत्समद	४३	४२९
तृतीय	,,	विश्वामित्र	६२	६१७
चतुर्थ	,,	वामदेव	५८	५८९
पंचम	,,	अत्रि	८७	७२७
षष्ठ	,,	भरद्वाज	७५	७६५
सप्तम	,,	वसिष्ठ	१०४	८४१

ये मण्डल प्रायः बढती सूक्त और मन्त्रसंख्या के दीखते हैं, एक स्थान-पर थोडासा व्युत्क्रम भी है।

प्रथम मण्डल की सूक्तसंख्या १९१ और मन्त्रसंख्या २००६ है।
दशम ,, ,, १९१ ,, ,, ,, १७५४ ,,

अष्टम मण्डल कण्व का दीखता है और प्रथम मंडल मधुच्छन्दा का है, तथापि इनमें अनेक अन्यान्य ऋषियों के देखे मन्त्र आये हैं। ये मन्त्र-संग्रह 'आर्षेय-संहिता' के दर्शक हैं। नवम मंडल सोमदेवता का है और इस को 'दैवत-संहिता' का सूचक मान सकते हैं।

इस तरह ऋग्वेदमें दोनों प्रकार के मन्त्रसंग्रह दीखते हैं, पहिले ७ मण्डल 'आर्षेय' हैं और नवम मण्डल 'दैवत' है। अर्थात् ऋग्वेद की यह व्यवस्था बतलाती है कि वेदमन्त्रों का अध्ययन 'आर्षेय-संग्रह' की दृष्टि से भी करना चाहिये और 'दैवत-संग्रह' की दृष्टि से भी करना चाहिये।

चारों वेदोंके संपूर्ण मन्त्रसंग्रह इन दो संग्रहों में बांटना चाहिये। अर्थात् एक ग्रंथ ऐसा बनाना चाहिये, कि जिस में ऋषियों के क्रमसे मन्त्रसंग्रह होवे और दूसरा ऐसा हो कि जिसमें दैवतक्रम से मंत्रसंग्रह हो। ऋग्वेद का इस समय का मन्त्रसंग्रह दोनों प्रकार के मंत्रसंग्रहों की सूचना पर्याप्त प्रबलता के साथ देता है।

स्वाध्यायमण्डलद्वारा इस समय **'दैवत-संहिता'** बनायी गयी है और उसका मुद्रण भी शुरू हो चुका है। इससे आगे एक दो मासोंमें हम अग्निदेवताके सब मंत्रोंके संग्रह का ग्रन्थ पाठकोंके सामने उपस्थित करेंगे। तत्पश्चात् इन्द्रदेवताके मंत्र छापे जांयगे। इस रीतिसे चारों वेदों की दैवत-संहिता हम सालभर के अन्दर ग्राहकों के पास पहुंचायेंगे।

दैवत-संहिता बनने के पश्चात् जो वेदाध्ययन का सौकर्य होगा और सहजही से वेदका तत्त्वज्ञान के साथ पाठकोंको परिचय हो जायगा, उसका वर्णन इस समय करना योग्य नहीं है। यह तो अग्निमन्त्रों का ग्रन्थ जब पाठकों के हाथमें पहुंचेगा, तब स्वयं प्रकट होनेवाली बात है।

जैसी **'दैवत-संहिता'** बननी चाहिये, इसी तरह चारों वेदों की मिलकर **'आर्षेय-संहिता'** भी बननी चाहिये। उससे भी एक प्रकार की अध्ययन की सुबोधता होनेवाली है। परन्तु इस विषय में हम दैवत-संहिताका मुद्रण संपूर्ण रीतिसे तैयार होनेपर लिखेंगे।

कई लोग **'दैवत-संहिता'** और **'आर्षेय-संहिता'** के बनाने की कल्पना से घबराते हैं। परन्तु ये दोनों मन्त्रसंग्रह वेदके अन्दर स्वयं वेदकर्ताने अंशतः बनाये ही हैं। जैसा कि नवम मण्डल केवल सोमदेवताके मन्त्रों के संग्रहसे बनाया है; यह सोमकी दैवत-संहिता ही है। जिस कारण वेदनेही सोमदेवता का संग्रह किया है, उसी मार्गसे चलते चलते हमने, अग्नि, इन्द्र आदि देवताओं के मन्त्रों का संग्रह किया, तो उसमें बिगडनेवाला क्या है ? सोमदेवता के मंत्र नवम मंडल में इकट्ठे मिलते

हैं । इस संग्रह से अध्ययन करनेवाले को सुविधा होती है या नहीं ? यदि इस वैदिक सोमसंग्रह से अध्ययन की सुविधा हुई है, तो अन्य देवताओंके संग्रह से किस तरह हानि होने की संभावना है ?

नवम मंडल के सोममंत्रसंग्रह के अध्ययन से जिस तरह सोमदेवता के स्वरूपज्ञान के लिये अध्ययन की सहायता होती है, इसी तरह अग्नि, इन्द्र आदि देवताओं के मंत्रसंग्रहों से देवताविज्ञान होनेमें निःसन्देह सहायता हो सकती है और किसी तरह हानि की कोई संभावना नहीं है ।

आर्षेय-संहिता तो वेदने प्रथमके सात आठ मंडलोंमें बनाकर बतायीहि है। वैसी किसीने चारों वेदों की आर्षेय-संहिता बनायी, तो कोई हानि नहीं होगी, परन्तु बडा लाभ होनेकी संभावना है ।

पाठक यह देखें कि ऋग्वेद में इन दोनों प्रकार की संहिताओं के बीज हैं, अर्थात् दैवत-संहिता भी नवम मंडलमें है और आर्षेय--संहिता भी प्रारम्भके ७-८ मण्डलों में है । दैवता--संहिता बनाने की कल्पना सबसे प्रथम इस नवम मण्डलके सोमदेवताके मंत्रसंग्रहको देखनेसेही सूझी । यह वेदमूलक होनेसे यह वैदिक पद्धतिही है और इसमें कोई दोष नहीं है ।

कई लोग इस बात से डरते हैं कि आगे यही संहिता प्रचलित होगी, क्योंकि इसमें सुविधा अधिक होगी । परन्तु हमारा ऐसा ख्याल नहीं होता है। जो प्राचीन आर्षपद्धति है, वही सदा के लिये रहेगी । हमने कितना भी यत्न किया, तो हमारी कृति ऋषियों की योग्यता को कभी नहीं पहुंच सकती ।

दूसरी बात यह है कि, हम जो कर रहे हैं, वह वेदके अध्ययन की सुविधा के लिये कर रहे हैं, वेदके बदले या वेदके स्थानमें इसका प्रचार हो इसलिये नहीं। इसलिये यहां केवल इस दैवत--संहिताका विचार इसी एकही दृष्टिसे करना चाहिये कि, यह दैवत--संहिता वेदाध्ययन में सुविधा कर सकती है या नहीं ? देवताओंके मंत्र इतस्ततः बिखरे रहनेसे

ठीक अध्ययन हो सकेगा, अथवा एक एक देवताके मन्त्र इकट्ठे रहनेसे अध्ययन करना सुगम हो जायगा? पाठक इस एकही दृष्टिसे इस दैवत-संहिताका विचार करें।

हमारा ख्याल यही है कि, दैवतसंहितासे ही वेदाध्ययन अधिक सुलभ हो जायगा। दस साल का कार्य ४ सालों में हो जायगा। आज जो वेदाध्ययन का डर लगता है और कुछ समझ में नहीं आता, वह डर हट जायगा, वह सब अडचण हल हो जायगी। यह हमने अग्नि और इंद्र के मंत्रसंग्रहों का अध्ययन करके देखा है और जिनको इस विषय में कुछ संदेह होगा, वे अभी प्रकाशित होनेवाले अग्नि आदि देवताओं के मंत्र-संग्रह देखें उस से सब सन्देहों की पूर्ण निवृत्ति हो जायगी। जो अपने आपको वैदिकधर्मी मानते हैं, उनका कर्तव्य है कि वे वेदाध्ययन की सुविधा करनेका यत्न करें, वही कार्य हम दैवतसंहिता के द्वारा कर रहे हैं।

जो लोग '**दैवत-संहिता**' की कल्पना से डरते हैं, उनको इस बात का विचार करना चाहिये कि अध्ययनकी सहायता के लिये केवल एकही दैवत-संहिता का बनाना पर्याप्त नहीं है, परंतु ऐसे अनेक ग्रंथ बनाने चाहिये। जो लोग एकही दैवत-संहिता से इतने डरते हैं, वे इन सब ग्रंथों की सूची देखने से कितने डरेंगे, यह समझ में नहीं आता।

क्या कभी वैदिक पदसूची, वैदिक शब्दकोश, वैदिक पदोंका निघण्टु ये ग्रंथ बनने से कुछ बिघड गया है? हमारे समझ में तो इनसे कुछ न कुछ वेदाध्ययन की सहायता ही हो गयी है। इसी तरह निम्नलिखित ग्रंथ बनने से और भी अधिक सहायता हो सकती है—

दैवत-संहिता, आर्षेय-संहिता, छांदससंहिता, श्रुतिमन्त्रसंग्रह, आगममंत्रसंग्रह।

*

शाखा–भेद ।

वेदोंकी चारों संहिताओंके शाखाभेद बहुत हो गये हैं। ऋग्वेदकी ५ से २१ तक शाखाएं विभिन्न विद्वानों द्वारा बतायीं जाती हैं, शुक्ल यजुर्वेदकी १६ और कृष्ण यजुर्वेदकी ८५ शाखाएँ अर्थात् यजुर्वेदकी १०१ शाखाएं हैं, सामवेद की १००० शाखाएं हैं और अथर्ववेदकी ९ शाखाएं हैं ।

ये सब शाखा-ग्रंथ इस समय कहीं भी संपूर्णतया प्राप्त नहीं होते । इनमें कुछ शाखाएं उपलब्ध हैं । जितनी शाखाएं उपलब्ध हैं, उनसे अधिक और कुछ शाखाएँ भारतवर्ष में उपलब्ध होना संभव है । इस समय तक कपिष्ठल शाखा नहीं मिलती, ऐसा समझा जाता था । परंतु थोडे समय पूर्व लाहौरके खोज करने में प्रवीण पण्डित डॉ० रघुवीरजीने वह मुद्रित करके प्रकाशित की । इससे वह अनुमान और भी सुदृढ होता है कि शाखाग्रंथ और भी इस भारतवर्ष में मिलना संभव है । यद्यपि युरोपीय विद्वानों ने इन ग्रंथों के लिये पानी जैसा पैसा खर्च किया, तथापि भारतीय विद्वान् यदि प्रयत्न करेंगे, तो और भी ग्रंथ मिल सकते हैं ।

यजुर्वेद वृक्ष ।

'यजुर्वेदवृक्ष' नासीक में मिला, जो वे० मू० यज्ञेश्वर दादाजी मैत्रायणीय, पंचवटी नाशीक के पास था । जो डॉ० रघुवीरजी द्वारा 'वैदिक स्टडीज्' नामक मासिक के १९३५ अप्रैल के अंक में प्रकाशित हुआ । जो उस मासिक का अवलोकन कर सकते हैं, वे उस समग्र लेखको वहीं अवश्य देखें । हम उक्त विद्वानों का हार्दिक धन्यवाद करते हुए उस यजुर्वेदवृक्ष का संक्षेप से यहां अनुवाद मूल सूत्रों के साथ देते हैं, इसके पठन से पता चलेगा कि यजुर्वेद की शाखाएं कहां कहां तक फैली थीं । देखिये यजुर्वेद वृक्ष कैसा है—

शुक्ल यजुर्वेदकी शाखाएं।

[१] काण्वों की १५ शाखाएँ।

१. काण्वाः कृष्णावेनाप्रदेशे– कृष्णानदी और वेणानदी के तटपर काण्व शाखा थी।

२. कठाः गोदादक्षिणे– गोदावरी नदीके दक्षिणभागमें कठशाखा थी।

३. पिञ्जुलकठाः, पिञ्जुलककठाः क्रौञ्चदेशे–क्रौंच पर्वत मानस-सरोवरके पास है। यह कैलासका एक भाग है और कुमायूँ प्रांत में है। सांप्रत में नितिपास (Niti Pass) करके जो प्रसिद्ध है, वहां यह पर्वत है, वहां इस शाखा के लोग रहते थे।

४. जृम्भककठाः श्वेतद्वीपे– तिब्बतकी पूर्व दिशामें श्वेतगिरी नामक पर्वत है, उसके पास यह शाखावाले रहते थे।

५. औदलकठाः शाकद्वीपे– मध्य आशिया खण्ड के तुर्कस्तान और तार्तार देशमें इस शाखावाले यजुर्वेदी रहते थे।

६. सपिच्छलकठाः शाकद्वीपे– (,, ,,)

७. मुद्गलकठाः काश्मीरदेशे–काश्मीरमें इस शाखाके विद्वान् रहते थे।

८. शृंगलकठाः सृजयदेशे– (इस देश का पता ठीक नहीं लगता, यह सृंजय है वा सृजय है, यहभी शंका है। इस नाम के लोग पांडवों के साथ लडते थे।)

९. सौभरकठाः सिंहलदेशे– सीलोन, लंकाद्वीपमें इस शाखाके लोग रहते थे।

१०. मौरसकठाः कुशद्वीपे– सांप्रतमें अवध प्रांतमें सुलतानपूर है, वही पूर्व समय का कुशपूर था। यही कुश राजा की राजधानी थी।

कुशस्थल, कनौज, कुशस्थली, कुशावती, द्वारका यह तो गुजरातकी ओर हैं। इन स्थानोंमें यह शाखा थी। महाराष्ट्रके सुप्रसिद्ध कोशकार विद्यानिधि सिद्धेश्वरशास्त्री चित्राव अपने प्राचीन चरित्रकोशमें पृ० ६६६ पर लिखते हैं कि यह कुशद्वीप सहारा की मरुभूमि, सौदान, गिनी, कामेरुन,कांगो स्टेटस्, पश्चिम और दक्षिण अफ्रीका हैं। स्व० इतिहासाचार्य विश्वनाथ काशिनाथ राजवाडेजी अपनी खोजपूर्ण लेखमें कहते हैं, हिंदुकूशके उत्तर की ओर कास्पियन समुद्र आरल पर्वतके मध्यका प्रदेश कुशद्वीप नामसे प्रसिद्ध था। तीसरे महाराष्ट्रीय संशोधक श्रीयुत वडेर कहते हैं कि, काकेशस पर्वत के आसपास का प्रदेश कुशद्वीप कहा जाता था। इन में या इन में से किसी एक देशमें इस शाखावाले यजुर्वेदीयोंका निवास था।

११ चंचुकठाः चंचुलकठाः यवनदेशे– यवनदेशमें यह शाखावाले रहते थे। वराहमिहिर अपनी बृहत्संहिता में (१४।१८ में) कंचुक कठोंका स्थान मध्य देश के नैऋत दिशा में था, ऐसा कहते हैं।

१२. योपकठाः यवनदेशे– (” ”)

१३. इष्टलकठाः (दापिष्ठलकठाः)यवनदेशे– (” ”)

१४. सैंगलकठाः (सिगलकठाः) सिंवलदेशे– सिंहलद्वीप सीलोन लंकाद्वीपमें।

१५. ओपकठाः क्रौंचद्वीपे– (ऊपर क्रौंचद्वीपपर की टिप्पणी सं० ३ में देखो, इसके अतिरिक्त) श्री० सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव अपने प्राचीन चरित्रकोश पृ० ६६६ पर लिखते हैं, कि यह क्रौंचद्वीप अल्जीरिया, मोरोक्को, बार्बरी, भूमध्यसमुद्र का पूर्वीय भाग, उत्तर

समुद्र, आयरिश समुद्र और रूस इन को छोडकर शेष युरोप क्रौंच-द्वीप है । स्व० वि० का० राजवाडेजी अपनी खोज में सिद्ध करते हैं कि समरकन्द बुखारा के आसपासका प्रदेश क्रौंचद्वीप है । इसका कारण इन्होंने यह दिया है कि यही बकपक्षियों-क्रौंच पक्षियों का मुख्य प्रदेश है । इसीलिये इस देश का नाम क्रौंचदेश है । श्री० वडेर महाशय कहते हैं कि पूर्व तुर्कस्तान और उससे सम्बन्धित चीन का कुछ भाग क्रौंच-द्वीप है । म० विल्फोर्ड के मत से स्कंडिनेविया ही क्रौंचद्वीप है । इन में से कोई एक देश क्रौंच-द्वीप होगा, जिसमें इस शाखाके लोग रहते होंगे (सं० ३ वाली टिप्पणी के साथ यह टिप्पणी देखी जावे)। इन काण्वशाखावाले १५ शाखाओं के स्थाननिर्देश इस वेदवृक्ष में कहे हैं ।

[२] वाजसनेयी माध्यंदिनोंकी १७ शाखाएं ।

१६. जाबालाः, नार्मदाः नर्मदाविन्ध्ययोर्मध्यदेशे- नर्मदा नदी और विंध्यपर्वत के बीचके प्रदेश में जाबाल शाखावाले रहते थे ।

१७. बौधेयाः, रणवटनामकाः, गोदामूलप्रदेशे- गोदावरी नदीके उगमस्थान के प्रदेशमें बौधेय शाखावाले रहते थे।

१८. कण्वाः, कर्णवटा, गोमतीपश्चिमदेशे- कण्व, कर्णवट इस शाखाके अनुयायी गोमतीनदीके पश्चिम प्रदेशमें रहते थे । (गोमती नदी अवध, गोदावरी के उद्गमस्थान के समीप, गुजरातमें द्वारका के पास, मालवा में चम्बलके पास, कांग्रा जीलेमें तथा अफगाणि-स्तान में गोमल (Gomal) ऐसी बहुत स्थानोंमें है । इनमें से कौनसा स्थान यहां अपेक्षित है, इसका पता नहीं लगता । इस विषय की खोज होनी चाहिये।)

१९. माध्यंजनाः, शरयूतीरनिवासिनः– माध्यंजन शाखावाले शरयूतीरपर रहते हैं।

२०. शापीयाः (शावीयाः) नागरा अमरकंटकनर्मदा-मूल-वासिनः– गोंडवनमें नागपूर जिलेमें मेकलपर्वतके पास अमरकण्टक स्थान है। यहां इस शाखाके लोग रहते थे।

२१. स्थापायनीया नारदेवाः (नारमदेवाः) नर्मदोत्तरदेशे– नर्मदा नदी की उत्तर दिशामें इस शाखाके लोग रहते थे।

२२. कापारा भूगौडाः (गौडाः) मालवदेशे-- मालवा में रहनेवाली यह शाखा है।

२३. पौंड्रवत्साः त्रिवाडानामका मालवदेशे-- (")

२४. आवटिकाः श्रीमखा मालवदेशे– (")

२५. परमावटिका आद्यगौडाः गौडदेशे-- गौडदेशमें इस शाखावाले रहते थे।

२६. पाराशर्याः (पाराशराः) गौडगुर्जराः मरुदेशे-- मारवाडमें इस शाखा के अनुयायी रहते थे।

२७. वैधेयाः श्रीगौडाः गौडदेशे-- गौडदेशमें॰ " "

२८. वैनेयाः कंकराः बौध्यपर्वते-- इन्द्रप्रस्थ के समीप बोधप्रदेश है, वहां यह शाखा थी।

२९. गालवाः गालवी सौराष्ट्रे-- काठियावाडमें,

३०. औधेयाः औधेयाः गुरथी गुर्जरदेशे-- गुजरातमें,

३१. वैजवाः वैजवाडनारायसरोवरे-- कच्छके रणमें यह नारायण-सरोवर है, उस सरोवर के समीपके प्रदेशमें यह शाखा रहती थी।

३२. कात्यायनाः नर्मदासंगमदेशे--नर्मदा नदी के संगमप्रदेश में कात्यायन शाखावाले रहते थे ।

[३] जाबाल शाखाके २६ भेद ।

३३. उत्कलाः उत्किलाः गौडदेशे,

३४. मैथिलाः विदेहदेशे-मैथिलमें,

३५. शवर्याः शर्वरीयाः मिश्रब्रह्मावर्तदेशे-- ब्रह्मावर्त के पास,

३६. कौशिकाः बाह्लीकदेशे-- रावी नदी पंजाबमें है, इस नदीकी पश्चिम दिशामें सतलज और बियास ये नदियां हैं । इनके बीचके प्रदेशमें (Balkh) बाल्हीक प्रदेश है, वहां यह शाखा थीं ।

३७. तन्तिलाः सौराष्ट्रदेशे-- यह शाखा काठियावाडमें थी ।

३८. वर्हिशीलाः बर्हिक-काश्मीर देशे-- काश्मीरमें,

३९. खेटकाः खैवट-द्वीपावासदेशे- (क्या यह खैबर है ?)

४०. औभिला हिमवद्दक्षिणदेशे-- हिमालय के दक्षिण भागमें यह शाखा रहती थी । (डान्तिलाः डोतील हिमालय दक्षिण देशे)

४१. गोभिलाः उभीलाः गण्डकीतीरदेशे-- गण्डकी नदीके तीर में इस शाखावाले रहते थे ।

४२. गौरवाः मद्रदेशे-- मद्रदेश रावी और चिनाव नदियोंके बीचमें है । (क्या मद्रास का कोई सम्बन्ध इससे हो सकता है ?)

४३. सौभीराः कौशिकदेशे-- गंगानदी को मिलनेवाली कुशी नदीके पास का यह देश है । इसमें इस शाखावाले रहते थे ।

४४. जृंभकाः आर्यावर्त-देशे-आर्यावर्तदेशमें,

४५. पौंड्रकाः मिश्रकवसल-देशे-- (खोज करनेयोग्य देश है)

४६. हरिताः सरस्वतीतीरगाः-- सरस्वती नदी गढवालमें अलकनन्दा नदीको मिलनेवाली नदी है। गुजरातमें रौनाक्षी नदी है और सिवालिक पर्वत के पास सिरमौर पहाडसे उगम होनेवाली नदी भी इसी नाम की है। इनमेंसे कौनसा स्थान इस शाखावालों का है, यह खोज करनेयोग्य विषय है।

४७. शौडकाः हिमवद्देशे-- हिमालयमें,
४८. रोहिणमिश्राः गुर्जरदेशे— गुजरातमें,
४९. मामराः काश्मीर-देशे— कश्मीरमें,
५०. लैगवाः कलिंग देशे— कलिंग देशमें,
५१. माण्डवाः गौडदेशे— गौडदेशमें,
५२. भारवाः मरुदेशे— मारवाडमें,
५३. चौभगाः मथुरा-देशे— मथुराके पास,
५४. टौनकाः नेपालदेशे— नेपालमें,
५५. हिरण्यशृंगाः मागधदेशे— मगधमें,
५६. कारुणिकाः मागधदेशे- "
५७. धूम्राक्षाः हिमवद्देशे- हिमालयमें,
५८. कापिलाः आर्यावर्तदेशे- आर्यावर्तमें (विंध्य और हिमालयके बीचमें,)

इन शाखाओं के अनुयायी इन प्रदेशोंमें रहते थे।

[४] गालव शाखाभेद २४ हैं।

५९. काणाः कनवजाः गौडदेशे— गौडोंके देशमें,
६०. कुब्जाः कुलकाः मागधदेशे- मगध देशमें,
६१. सारस्वताः सरस्वतीतीरे-- सरस्वती नदीतीरपर,

६२. अङ्गजाः अङ्गदेशे-- अंग देशमें,

६३. वङ्गजाः वङ्गदेशे-- बंगालमें,

६४. भृङ्गजाः भृङ्गाः भृङ्गदेशे--

६५. यावनाः योवनाः सङ्गरदेशे--

६६. शैवजाः मरुद्देशे-- मारवाडमें,

६७. पालीभद्राः पारीभद्राः सिंगलदेशे--

६८. नैवलाः कूर्मदेशे-- कुमायूँ करके जो प्रदेश इस समय है, वही कर्मवान्, या कूर्मांचल है। तथा जंगम जिलेमें चिकाकोलके पूर्वमें ८० मील दूरीपर कूर्मक्षेत्र है। संभवतः यह भी कूर्मदेश होगा। यह देश अन्वेष्टव्य है।

६९. वैतानलाः नेपालदेशे-- नेपालमें,

७०. जनिश्रवाः मत्स्यदेशे-- मत्स्यदेश जयपुर, अलवार और भरतपूर का प्रान्त है, वहां यह शाखा रहती थी।

७१. भद्रकाः बौध्यपर्वतदेशे--

७२. सौभराः ,, ,, —

७३. कथिश्रवाः कुथिवश्रवाः हिमवद्देशे— हिमालयपर,

७४. बौध्यकाः बौध्यपर्वते—

७५. पाञ्चलजाः पाञ्चालदेशे— पांचालमें,

७६. ऊर्ध्वांगजाः काश्मीरदेशे— कश्मीरमें,

७७. कुशेंद्रजवाः कूर्मदेशे— (६८ की टिप्पणी देखो)

७८. पुष्करणीयाः मारवाडदेशे— मारवाडमें,

७९. जयत्रवाराः मरुद्देशे—

८०. ऊर्ध्वरेतराः ,, —

८१. कथसाः काथसाः गोदादक्षिणभागे— गोदावरी नदी के दक्षिण भागमें,

८२. पालाशनीयाः— (पळशी) गोदाद्दक्षिणे देशे (")

सप्तषष्टि मांध्यन्दिन संहिताः (६७) याज्ञवल्कीयकाण्वादयः पञ्चादशसंहिताः (१५), = मिलित्वा द्व्यशीतिसंख्याकाः शुल्क-याजुषाः (८२)।

[५] कृष्ण-यजुर्वेदः = तैत्तिरीया अष्ट भेदाः। (८)

१. तैत्तिरीया तिरंगुलगोदाद्दक्षिणदेशे— गोदावरी नदी के दक्षिण प्रदेशमें,
२. औख्याः आर्द्रजाः आन्ध्रदेशे— आन्ध्र प्रांतमें,
३. काण्डिकेयाः तिरगुलदक्षिण देशे— तिरगुलके दक्षिणदिशामें,
४. आपस्तंबीयाः आन्ध्रदेशे—
५. बौधायनीयाः शेषदेशे (दक्षिणदेशे)-- दक्खन में,
६. सत्याषाढीयाः देवरुखकृष्णातीरे--देवरुखमें, कृष्णानदीके तटपर,
७. हिरण्यकेशीयाः परशुरामक्षेत्रे (कोंकणे)--कोकणमें,
८. औधेयाः माल्यपर्वतदेशे-- आनागोंदी विजयानगर राज्य में तुंगभद्रानदी के तीरपर,

आन्ध्रादिदक्षिणाग्नेयी गोदासागरआवधि।
यजुर्वेदस्तु तैत्तिर्य आपस्तम्बी प्रतिष्ठिता॥
सह्यादिपर्वतारम्भात् दिशां नैऋत्यसागरात्।
हिरण्यकेशी शाखा च परशुराम-सन्निधौ॥

[६] चरकाणां द्वादश भेदाः (१२)

१. चरकाः पश्चिमदेशे-- पश्चिमदेशमें,
२. आह्वरकाःनारायणसरोवरे-- (टिप्पणी ३१ देखो)
३. कठाः करध्र (कठ इति प्रसिद्धे) यवनदेशे-- यवनदेशमें,
४. प्राच्यकठाः प्राची-कठघ्न-यवनदेशे—

५. कपिञ्छ (कपिष्ठल) कठाः कपिञ्छलकठघ्न (कपिष्ठलकठ) यवनदेशे ·

६. चारायणीयाः-- यवनदेशे--

७. वार्तलवेयाः वार्तलवश्वेतद्वीपदेशे--

८. श्वेताः (श्वेतरी) श्वेतद्वीपे--

९. श्वेततराः श्वेततराणि श्वेतद्वीपे--

१०. औपमन्यवाः क्रौञ्चद्वीपे--

११. पाताण्डिनीयाः पाताण्डिन्यवीमरुतेक्ता इव पुराणदेशे-- काश्मीर की राजधानी पुराणाधिष्ठान--पुराण देश यही है।

१२. मैत्रायणीयाः गोदादक्षिणदेशे--

[७] मैत्रायणीयाःभेदाः सप्त (७)

१. मानवाः सौराष्ट्रदेशे-- काठियावाड में,

२. दुन्दुभाः काश्मीरदेशे-- कश्मीर में,

३. ऐकेयाः सौराष्ट्रे-- काठियावाडमें,

४. वाराहाः मरुदेशे-- मरुप्रदेशमें,

५. हरिद्रवेवाः गुर्जरदेशे-- गुजरात में,

६. श्यामाः गौडदेशे--

७. श्यामायनीया गोदावरीतीरे-- गोदावरीके तीरपर,

मयूरपर्वताच्चैव यावद्गुर्जरदेशतः।
व्याप्ता वायव्यदेशस्तु मैत्रायणी प्रतिष्ठिता ॥ (महार्णव)

कृष्णयजुः

तैत्तिरीयाः	८
चरकाः	१२
मैत्रायणीयाः	७
	२७

शुक्लयजुः

काण्वाः	१५
वाजसनेय्याः	१७
जाबालाः	२६
गाल्वाः	२४
	८२

८२+२७=१०९ यजुर्वेद--शाखाः।

इस तरह यजुर्वेद की १०९ शाखाओं की नामावली इस यजुर्वेदवृक्ष से मिलती है। यह यजुर्वेद का वृक्ष है। इसी तरह ऋग्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के वृक्ष होंगे। यद्यपि उनका अबतक किसी को पता नहीं लगा; तथापि वे अवश्य किसी स्थानपर होंगे, हमारे पास सामवेदके वृक्षका एक पृष्ठ वसई के किसी इसाई सज्जन से मिला था, परन्तु उस पुस्तक में ऊपर के पृष्ठपर हि वेदवृक्ष करके लिखा था और अन्दर कुछ अन्य पृष्ट मराठी ग्रंथ के थे। इस विषय में आगे खोज करने से पता लगा कि, इस मुंबई के पास वसई आदि स्थानों में हजारहां सामवेदी रहते थे। वे जबरदस्ती से ईसाई किये गये और उनके घर के सब वैदिक ग्रंथ जला दिये गये। पता नहीं, इस ईसाईयों की आसुरी लीला के भक्ष्य में कितने वैदिक ग्रंथ नष्ट हुए होंगे!!!

पाठकों को उचित है कि, वे इस तरहके वेदवृक्ष किसी स्थानपर मिले, तो उनको प्रकाशित करें।

इस से पूर्व कुशद्वीप और क्रौंचद्वीप के विषय में कुछ लिखा गया है। शाकद्वीप और श्वेतद्वीप के विषयमें महाराष्ट्रीय विद्वानोंकी खोज अब यहां लिखते हैं—

शाकद्वीप।

श्री० विद्यानिधि सिद्धेश्वरशास्त्री चित्राव लिखते हैं कि शाकद्वीप वह है कि, जो अतलान्तिक महासागर में समुद्र के अन्दर चला गया था। स्व० राजवाडे व श्री० वडेरजी की खोज से यह सिद्ध हुआ है कि, आजकल जिसको सिथिया कहते हैं, वही शाकद्वीप था।

श्वेतद्वीप।

आजकल का 'मादागास्कर' जो है, उसके पासका टापू श्वेतद्वीप है;- ऐसा श्री० चित्रावशास्त्रीजी अपने प्राचीन चरित्रकोश के पृ० ६६७ पर लिखते हैं।

उक्त खोज तीन बडे महाराष्ट्रीय विद्वानों की है। इस विषय में एकदम कुछ कहना कठीन है, परन्तु इतना तो निश्चित ही है कि यजुर्वेदियों का भूप्रदेश इस समय के अखिल भारतवर्ष से, इस समय के हिंदुस्थान से बहुत ही दूरतक बाहर था। उक्त द्वीपों की मर्यादायें तो युरोप, अमरिका, अफ्रीका तक पहुंचती हैं। यवनदेश भी भारतवर्ष से बाहर ही है। उक्त प्रदेश कास्पियन समुद्र, दक्षिण रूस, पश्चिम और चीनका तुर्कस्तान आदि सब भूभाग यजुर्वेदियोंने घेरा था, ऐसा इससे प्रतीत होता है। यदि अन्य वेदों के वृक्ष मिल जांयगे, तो इस अनुमान की पुष्टि हो सकती है।

भारतवर्षके चारों दिशाओं में करीब ५०० मीलतक यजुर्वेद की व्याप्ति हो चुकी थी और इस प्रदेश में यजुर्वेद के मंत्र गाये जाते थे और यजुर्वेदमन्त्रों के साथ होनेवाले हवनसे इन देशोंकी हवा सुगन्धित होती थी, यह बात इससे स्पष्ट हो गयी है। तथापि अधिक प्रमाणों की खोज करनी आवश्यक है।

यजुर्वेद की शाखाओं से पृथ्वीका भाग इस तरह व्याप्त था, ऐसा माननेपर शाखाग्रन्थोंमें परस्पर पाठभेद क्यों हुए हैं, इसका पता सहजही से लग सकता है।

गोदावरी तीरपर एक शाखा है, हिमालय के किसी शिखर पर दूसरी है, तुर्कस्थान में तीसरी है और कास्पियन समुद्र के पास चौथी है, यह ऐसे समयमें है, कि जिस समय दैनिक डाक पहुंचानेके साधन उपलब्ध नहीं थे, मुद्रणयन्त्र नहीं थे, मद्रास का वृत्त तुर्कस्थान में पहुंचने के लिये कितने वर्ष लगते होंगे, इसका निश्चित पता नहीं लगता। ऐसी अवस्था में विभिन्न शाखाओंमें अनेक पाठभेद उत्पन्न हुए, तो कोई आश्चर्य नहीं है। इतने देशदेशांतर में रहते हुए, इन विभिन्न शाखाओं की विभिन्न संहिताओंमें इतनी एकता रखी गयी है, यही बडे आश्चर्य की बात है।

मूल संस्कृत भाषा बिगडकरहि विभिन्न भाषाओं में कितने विभिन्न रूप बन गये हैं। ऐसी अवस्थामें वैदिक संहिता में इतनी एकता रही, यही आश्चर्य है। इसलिये हमें अब संहिताओं का एकीकरण कर के मन्त्रों की **'दैवत-संहिता'** और याजुष गद्यभाग की एक **'यज्ञ-संहिता'** बनानी चाहिये, और सब पाठभेद टिप्पणी में संग्रहित करने चाहियें। इस से वेदके अर्थ करने में बडी सुविधा होगी, और वैदिक धर्म का भी सत्य ज्ञान निश्चित रीतिसे हो सकेगा।

खोज करनेवालों को इस कार्य में लगने की प्रेरणा हो, ऐसी प्रभु से प्रार्थना करके यहीं विराम करते हैं।



श्रीमद्भगवद्गीता ।

संपादक- पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

इस 'पुरुषार्थबोधिनी' भाषाटीकामें यह बात दर्शायी गयी है कि वेद, उपनिषद् आदि प्राचीन ग्रंथोंके ही सिद्धान्त गीतामें नये ढंगसे किस प्रकार कहे हैं । अतः इस प्राचीन परंपराको बताना इस 'पुरुषार्थ-बोधिनी' टीका का मुख्य उद्देश्य है, अथवा यही इसकी विशेषता है ।

गीता-के १८ अध्याय ३ सजिल्द पुस्तकों में विभाजित किये हैं—

अ० १ से ५ मू० ३) डा० व्य० ॥=)
,, ६ ,, १० ,, ३) ,, ,, ॥=)
,, ११ ,, १८ ,, ३) ,, ,, ॥=)

डा० व्य० सहित मू० ९) रु० भेजिये ।

फुटकर प्रत्येक अध्यायका मू० ॥) और डा० व्यय =) है ।

श्रीमद्भगवद्गीता-समन्वय ।

'वैदिक धर्म' के आकार के १३६ पृष्ठ, चिकना कागज, मू० १) सजिल्द का मू० १॥) रु०, डा० व्यय ।=) डा० व्यय सहित मूल्य भेज दीजिये । यह पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीताका अध्ययन करनेवालोंके लिये अत्यंत आवश्यक है ।

भगवद्गीता-श्लोकार्धसूची ।

इसमें श्रीगीताके श्लोकार्धोंकी अकारादिक्रमसे आद्याक्षरसूची है और उसी क्रमसे अन्त्याक्षरसूची भी है । मूल्य केवल ।=) डा० व्य० =) ।

मंत्री-स्वाध्याय-मण्डल, औंध (जि० सातारा)